भूमिका

आलोक पुस्तकमाला की आठवीं पुस्तक सेनापति रत्नावली काशित करते हमें अपार हर्ष हो रहा है। यह संग्रह तीन सोपानों में समाप्त किया गया है। इस संग्रह में सेनापति कवि की सर्वोत्तम रचनाओं के समावेश करने का प्रयत्न किया गया है।

इस पुस्तक के संकलन में मुझे पं० शेषनारायण शोकहा, एम० ए०, एल० एल० बी० और पं० हरीकृष्ण चतुर्वेदी बी० ए०, हेडमास्टर रणवीर विद्यालय अमेठी से बड़ी सहायता मिली है अतएव इन मित्रों को मैं धन्यवाद देता हूँ।

प्रयत्न की सफलता या असफलता का निर्णय पाठक ही करेंगे। यदि पाठकों ने हमें उत्साहित किया तो हम आगे और भी कवियों की कृतियाँ अपनी पुस्तकमाला में प्रकाशित करेंगे।

—संकलनकर्ता

सेनापति परिचय

कविवर सेनापति का स्थान हिन्दी साहित्य के इतिहास के मध्यकाल में आता है; कुछ विद्वानों के मतानुसार आप रीतिकालीन कवियों की परम्परा में आते हैं और कुछ के अनुसार भक्तिकालीन कवियों की श्रेणी में। परन्तु आपकी सपूर्ण रचनाओं को देखने से आपका स्थान भक्तिकालीन कवियों की ही श्रेणी में रखना समीचीन होगा। आपका आविर्भाव काल अनुमानतः १७ वीं शताब्दी के अन्त से १८ वीं शताब्दी के आरम्भ तक माना गया है।

आप अनूपशहर के रहने वाले थे जो कि बुलन्दशहर के जिले में गगातट पर एक प्रसिद्ध कस्बा है। आप कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे, पिता का नाम गगाधर, पितामह का नाम परशुराम तथा गुरु का नाम हीरामणि दीक्षित था। आपका जन्म काल स० १६४६ के आस पास माना गया है। हृदय बड़ा ही शुद्ध, सरस तथा भावुक था। प्रतिभा भी इनकी बड़ी ही विलक्षण तथा प्रौढ़ थी। इसके अतिरिक्त कल्पनाशक्ति तीव्र तथा बहुमुखी थी। इनका सम्बन्ध मुसलमानी दरबारों से रहा तथा वहाँ अच्छा मान भी रहा इसका प्रमाण इनके कुछ कवित्तों से मिलता है। इन्होंने अपना परिचय एक छन्द में इस प्रकार दिया है।

दीछित परसराम दादौ है विदित नाम,
जिन कीन्हे जज्ञ, जाकी जग में बड़ाई है।
गगाधर पिता गगाधर के समान जाके,
गगा तीर बसत 'अनूप जिन पाई है।

महा जानमनि, विद्या दान हू में चिंतामनि,
हीरामनि दीछित तें पाई पडिताई है।
सेनापति सोइ, सीतापति के प्रसाद जाकी,
सब कवि कान दै, सुनत कविताई है॥

आप स्वाभिमानी भी थे, आपकी रचनाओं में गर्वोक्तियाँ उचित जान पड़ती हैं। जैसे—

आपने करम करिहौं हीं निबहौंगो तौब,
हौं ही करतार करतार तुम काहे के।

आप प्रधानतया राम भक्त थे परन्तु श्रीकृष्ण तथा शिवजी को भी मानते थे। शिवसिंह सरोज में लिखा है कि पीछे इन्होंने क्षेत्र संन्यास ले लिया था। इस बात की पुष्टि इस कथन द्वारा कुछ होती है—

सेनापति चाहत है सकल जनम भरि,
वृन्दावन सीमा तें न बाहिर निकसिबौ।
राधा मनरंजन की शोभा नैन कंजन की,
मालगरे गुंजन की, कुंजन को बसिबौ॥

इनके भक्तिभाव से पूर्ण अनेक कवित्त कवित्तरत्नाकर में मिलते हैं। यथा—

महा मोह कंदनि में जगत जकंदिनि मे,
दिन दुख-दुदनि में जात है बिहाय कै।
सुख को न लेस है, कलेस सब भाँतिन का,
सेनापति याही ते कहत अकुलाय कै।
आवै मन ऐसी घर बार परिवार तजौं,
डारौं लोक लाज के समाज के बिसराय कै।

हरिजन पुंजनि में, वृन्दावन कुजनि में,
रहौं वैठि कहूँ तरवर तर जाय कै ॥

इनके रचे हुए दो ग्रन्थ कहे जाते हैं— १—काव्य कल्प द्रुम २—कवित्त रत्नाकर। प्रथम ग्रन्थ का अभी तक ठीक-ठीक पता नहीं लग सका है। दूसरा ग्रन्थ-कवित्तरत्नाकर-कवित्तों का सग्रह रूप है। यह ग्रन्थ सब से पिछला ग्रन्थ जान पड़ता है। क्योंकि उसकी रचना सं० १७०६ में हुई है यथा—

सवत सत्रह सौ छ में सेइ सियापति पाय।
सेनापति कविता सजी सज्जन सजौ सहाय ॥

कवित्तरत्नाकर पाँच तरगों में विभाजित है। प्रथम तरग में कविवर ने कुछ प्रार्थना, स्वपरिचय, काव्य परिचय सवन्धी कवित्त लिखकर शेष ९६ छन्दों में श्लेषात्मक कवित्तो का सर्वोत्तम अनूठी एव सर्वोत्कृष्ट सग्रह है। ऐसे कवित्तो का सग्रह हिन्दी साहित्य भर मे नही प्राप्य है। दूसरी तरग में ७४ कवित्त मे शृङ्गार विषयक रचे गये हैं। तीसरी तरग मे ६२ छन्दो मे ऋतु वर्णन सम्बन्धी सर्वोत्कृष्ट पद सग्रहीत हैं। चौथी तरग में श्रीराम संबन्धी कथाओ का ७६ छन्दों मे वड़ा ही सुन्दर भक्ति भाव पूर्ण वर्णन किया गया है। पाँचवीं तरङ्ग में भक्ति सम्बन्धी ८६ छन्द रचे गये हैं जिनमे १२ छन्द चित्र काव्य के भी हैं। इस प्रकार से कुल ३८४ छन्दो मे यह 'कवित्त रत्नाकर' सग्रह तैयार हुआ है। इसी ग्रन्थ क आधार पर अब हम कविवर जी की काव्य कला पर दृष्टिपात करने का प्रयत्न करेंगे।

ऋतु वर्णन—सर्व प्रथम ऋतु वर्णन का विषय द्रष्टव्य है। इनका षट-ऋतु वर्णन हिन्दी साहित्य मे अपने ढग का

अनूठा ही है, उसके टक्कर का दूसरा ऋतु वर्णन किसी भी कवि का नहीं ठहरता। ये उस कक्षा के कवियों में सर्व प्रधान कवि हैं जिन्होंने शृंगार रस के उद्दीपन सम्बन्धी ऋतु वर्णन की एक स्वतंत्र परम्परा का निर्माण किया और मुक्तक काव्य रचना के लिये एक स्वतंत्र विषय निश्चित किया है। आपके षड ऋतु वर्णन में प्रकृति निरीक्षण तथा उसी प्रकार चित्रण करना अत्यन्त प्रशंसनीय है। यह वर्णन सर्वथा अलंकृत तथा आकर्षक है। उसमें अस्वाभाविकता नहीं वरन सरसता एवं मधुरता अधिक है। कल्पना एव काव्य कला का भी प्रयोग उचित तथा सुन्दर रीति से किया गया है।

कविवर के ऋतु वर्णन में एक बात ध्यान देने योग्य यह है कि वह उद्दीपन के रूप में किया गया है, विशेषकर बारहमासे के अधिकांश कवित्त उद्दीपन विभाव की दृष्टि से ही रचे गये है। पर सर्वत्र ऐसा नहीं पाया जाता। कवि ने अपने प्रकृति वर्णन मे अपनी प्रतिभा शक्ति का अच्छा प्रदर्शन किया है। इसके उदाहरण इस रत्नावली में देखे जा सकते हैं। आपने ऋतु वर्णन मे ऋतुओ के उत्कर्ष को वर्णित करने की यथेष्ट चेष्टा की है और ऐसे वर्णन अलकार प्रधान हो कर और मनोरजक हो गये हैं।

इसके अतिरिक्त आपके काव्य का विषय लौकिक तथा धार्मिक भी रहा है। जहाँ तक लौकिक विषय का सम्बन्ध है वहाँ इन्होंने साधारण वस्तु को असाधारण ढंग से इस प्रकार रक्खा है कि इनकी अनोखी सूझ व मौलिकता का अपूर्व परिचय प्राप्त होता है। प्रथम तरंग में श्लेषात्मक छन्दों में

थाती व कवित्त का वर्णन, स्त्री व चौपड का वर्णन, स्त्री व मेंहदी का वर्णन, कामिनी व पाग का वर्णन, नायिका व सुनार का वर्णन, कपोल का तिल व तिल्ली का वर्णन, इसी प्रकार अन्य साधारण विषयो के वर्णन उदाहरण स्वरूप लिये जा सकते हैं। इन वस्तुओं के वर्णन बडे ही असाधारण ढग से सुन्दर भावो द्वारा व्यक्त करके कवि ने अपनी काव्य कुशलता का अच्छा परिचय दिया है।

इन विषयो के अतिरिक्त कवि ने भक्ति भावना सम्बन्धी भी विषय लिये हैं। यह ध्यान रखन की बात है कि ये किसी भक्ति सप्रदाय के कवि नहीं थे। आपने स्वतत्र होकर भक्ति संबन्धी पद रचे है। फिर भी यदि हम इन्हे किसी भक्त कवि की श्रेणी मे स्थान देना चाहे तो गोस्वामीजी को ही कवि परम्परा मे रख सकते हैं क्योकि इन कवि ने भी गोसाई जी की भाँति रामावतार के लोकोपकारी गुणो का वर्णन विस्तार तथा तन्मयता के साथ किया है। आप श्रीरामचन्द्रजी के उत्कृष्ट भक्त थे यद्यपि अन्य देवो पर भी श्रद्धा थी। वैष्णव भक्तो की भाँति आपकी तीर्थ सेवन तथा गगा स्नान पर पूरी आस्था थी और इसको वडी ही तल्लीनता के साथ प्रकट भी किया है। जीवन की नश्वरता ईश्वर का रक्षा भाव, दैन्य भाव, सगुणोपासना, शिव महिमा, ससार की अनित्यता आदि अनेक भक्ति सम्बन्धी विषयों पर अनेक कवित्तो की पवित्र धारा बहाई है जिसका कि हृदय पर स्वच्छ प्रभाव पड़ता है। गगाजी का वर्णन आपने १५-१६ छन्दो में भक्ति भावना से प्रेरित होकर सुन्दर एव वडे ही मनोहर शब्दो मे व्यक्त किया है। आपकी "भक्ति भावना में

हृदय की तल्लीनता है और अनुभूतियों की सचाई है। अपनी भक्ति भावना के कारण वे जीवन की उस स्थिति तक पहुच गये थे जहाँ सासारिक यातनाये मनुष्य के लिये कोई महत्व नहीं रखती और हृदय शान्त हो जाता है।

वर्णन शैली--इन कविवर जी ने अपनी रचनाओ को उत्कृष्ट बनाने के लिये दो बातो पर विशेष ध्यान रक्खा है। १ अलकारिकता, २—भावगम्यता। इन्हीं दोनों के आधार पर 'रत्नाकर' की रचना की गई है। कई साहित्याचार्यो के मतानुसार अलकार में श्लेष का स्थान सर्वश्रेष्ठ माना गया है। कारण यही है कि यह अलकार व्यापक रूप स अन्य सभी अलकारो मे किसी न किसी रूप मे अवश्य वर्तमान रहता है। श्लेष के द्वारा कवि की अर्थ शक्ति तथा काव्य शक्ति का ज्ञान प्रकट होता है। इसी श्लेष के प्रयोग द्वारा भावगम्यता भी आ जाती है जैसा कि इन कविवरजी ने किया भी है। इन दोनो का वास्तविक सयोग हम इन कविवरजी की रचनाओं के अतिरिक्त हिन्दी साहित्य भर मे नही पाते। उदाहरण स्वरूप 'रत्नाकर' का प्रथम तरग प्रत्यक्ष ही है। आपके उन श्लेषो म कुछ अधिक सरसता पाई जाती है जिनमें ऐस समता सूचक अलकारों का मिश्रण हुआ है, जिनके उपमेयों तथा उपमानों में किसी न किसी प्रकार का सादृश्य पाया जाता है। यथा—

सारग धुनि सुनावै घन रस बरसावै,
मोर मन हरषावै अति अभिराम है।
जीवन अधार बडी गरज करनहार,
तपति हरनहार देत मन काम है।

सीतल सुभग जाकी छाया जग सेनापति,
पावत अधिक तन मन विसराम है।
सपै पै सग लीने सनमुख तेरे बरसाऊ,
आयौ घनश्याम सखि मानौ घनस्याम हैं।

यहाँ मेघ तथा कृष्ण का ही साम्य नही है वरन दोनो का लक्ष्य स्थान एक ही है तथा दोनों के क्रिया कलाप भी एक ही हैं। इस प्रकार के अनेक कवित्त प्रथम तरग मे अच्छे से अच्छे वर्तमान हैं। इनमें मस्तिष्क की चतुरता दिखलाने के अतिरिक्त हृदय से भी काम लिया गया है, इसीसे इनमे काफी सरसता तथा स्वाभाविकता भी पाई जाती है। यही कविवर के काव्य की विशेषता है। मस्तिष्क का विषय होने हुए हृदय का भी विषय बना हुआ है। आपने अपने कवित्तों में अभग पद तथा सभग पद श्लेषों का प्रयोग सुचारु रूप से किया है परन्तु सभग पद श्लेष के प्रयाग में अच्छी कुशलता तथा अद्वितीय सफलता प्राप्त हुई है कारण सभग श्लेष लिखने मे सहृदयता से काम लिया है। यथा—

सदा नदी जाकौ आसा कर है विराजमान,
नीकौ घनसार हू तें बरन है तन को।
सैन सुख राखै सुधा दुति जाके सेखर है,
जाके गौरी कीरति जो मथन मदन कौ।
जो है सब भूतन कौ अतर निवासी रमै,
धरै उर भोगी भेष धरत नगन कौ।
जानि बिन कहैं जानि सेनापति कहैं मानि,
बहुधा उमाधव कौं भेद छाँडि मन कौ॥

अंतिम पंक्ति में 'उमाधव' से अर्थ एक पक्ष में शिव का हो जाता है दूसरे पक्ष में 'उमाधव' के 'उ' को 'बहुधा' में लगा कर 'बहुधाउ' माधव कर लेने से विष्णु का अर्थ हो जाता है। इनमें विशेष कठिनाई नहीं पड़ती। कहीं कहीं तो कवि ने स्वयं ही विभिन्न पक्षों में स्पष्ट लिख दिया है—

तारन की जोति जाहि मिले पै विमल होति,
जाके पाइ संग मैं न दोष सरसत है।
भुवन प्रकास उर जानियै ऊरध अध,
सोउ तही मध्य जाके जगतै रहत है।
कामना लहत द्विज कौसिक सरज विधि,
सज्जन भजत महा तम हित रत है।
सेनापति बैन मरजाद कविताई की जु,
हरि, रवि, अरुन तमी कौ बरनन है॥

यहाँ स्पष्ट है कि कवि ने विष्णु, लाल सूर्य तथा रात्रि का वर्णन किया है।

इसके अतिरिक्त आपके श्लिष्ट कवित्तों में एक विशेषता यह भी है कि उनमें पृथक्-पृथक् भाव वाले होते हुए तीन-तीन अर्थ तक घटते हुए दिखाई पड़ते हैं। उनके उपमेय तथा उपमान में अन्तर नहीं रह जाता जैसा कि उपर्युक्त कवित्त में दिखलाया गया है।

इनके कुछ श्लिष्ट कवित्तों में एक यह भी विशेषता है कि उनमें समता तथा विषमतासूचक भावों का बड़ा ही सुन्दर निर्वाह हुआ है जो कि अन्यत्र अप्राप्य है। यथा—

नाहीं नाहीं करै, थोरी माँगे सब दैन कहै,
मगन को देखि पट देत बार बार हैं।
जिनकों मिलत भली प्रापति की घटी होति,
सदा सब जन मन भाए निरधार हैं।
भोगी ह्वै रहत बिलसत अवनी के मध्य,
कनकन जोरै, दान पाठ परिवार हैं।
सेनापति वचन की रचना निहारि देखौ,
दाता और सूम दोऊ कीन्हे इक सार हैं॥

इसी प्रकार अनेक उदाहरण कवित्तरत्नाकर में पाये जा सकते हैं जिनमें कि श्लेषालंकार का अद्भुत एव अनुपम प्रयोग सुन्दरता के साथ हुआ है। इस अलंकार के अतिरिक्त कविवर ने भाषा पर विस्तृत अधिकार होने के कारण अनुप्रास का भी अच्छा प्रयोग किया है—

नीकी मति लेहु, रमनी की मति लेहु मति,
सेनापति चेत कछू, पाहन अचेत है।
करम करम करि करमन कर पाप,
करम न कर मूढ़, सीस भयौ सेत है।
आवे बनि जतन ज्यौं, रहै बनि जतनन,
पुन्न के बनिज तन मन किन देत है।
आवत बिराम! बैस बीती अभिराम तातैं,
करि बिसराम भजि रामैं किन लेत है॥

चित्रालंकार की भी छटा श्रीरामरसायन के अंत में अच्छी प्रदर्शित की गई है—

रे रे रामा मै रमैं, रोम रोम मै रारि।
रमौ रमा मै रामि मै, मार मार रे मारि॥

इसके अतिरिक्त सादृश्य मूलक अलंकारों में कविवर ने नखशिख वर्णन में प्रतीप का प्रयोग, ऋतु वर्णन में उत्प्रेक्षा क भी अच्छा प्रयोग किया है जिसके कि उदाहरण इस रत्नावली ं अन्यत्र देखे जा सकते हैं।

रस परिपाक–सेनापति पर युग का प्रभाव अवश्य पड़ है। यद्यपि आपने रीति कालीन परिपाटी का अनुसरण नहीं किय है। आपके काव्य में शृङ्गाररस की प्रधानता पाई जाती है परन्तु तत्कालीन कवियों की अपेक्षा इनमें यह विशेषता है कि शृङ्गार की भाँति अन्य रसों (वीर, शान्त, भयानकादि) का भी परिपाक सफलतापूर्वक अपने स्वाभाविक सौन्दर्य वर्णन में मौलिक ढंग से कर दिखलाया है। शृङ्गार रस के आलंबन विभाव नायक-नायिका हैं। आलंबन विभाव के अन्तर्गत कवि ने अपनी रुचि के अनुकूल नायिकाओं के कुछ भेदों को चुन कर कुछ पद अवश्य रचे हैं। मुग्धा, खण्डिता, वचन विदग्धा का वर्णन बड़ी ही सुन्दर रीति से अलङ्कृत भाषा मे किया है। परकीया नायिका का वर्णन विशेष रूप से किया है पर स्वकीया के अन्तर्गत 'प्रौढ़ास्वाधीन पतिका' का वर्णन भी सराहनीय है। नायक-नायिका के नख शिख वर्णन भी उद्दीपन विभाव की दृष्टि से किये गये हैं जिनमें उपमानों से सहायता अधिक ली गई हैं। संयोग शृङ्गार के अतिरिक्त कवि ने वियोग शृङ्गार पर भी कवित्त रचे हैं। विरह वर्णन में बिहारी की भाँति कल्पना की लम्बी उड़ान नहीं है वरन स्वाभाविकता ही है। वियोग वर्णन मे ऋतु वर्णन को भी

सहायता उद्दीपन की दृष्टि से ली गई है। यद्यपि आपके वियोग वर्णन में सचारी भावों का विस्तृत वर्णन नहीं है तथापि जो भी भाव आपने उठाया है उसे बड़ी ही सफलता के साथ सरल एवं स्वाभाविक ढंग से निबाहा है यथा—

कौनें बिरमाये, कित छाये, अजहूँ न आए,
कैसे सुधि पाऊँ प्यारे मदनगुपाल की।
लोचन जुगल मेरे तादिन सफल ह्वै हैं,
जा दिन बदन छबि देखौं नंदलाल की॥
सेनापति जीवन अधार गिरिधर बिन,
और कौन हरै बलि बिथा मो बिहाल की।
इतनी कहत, आँसू बहत फरकि उठी,
लहर लहर दृग बाँई ब्रज बाल की।

यहाँ बाँई आँख फड़कने के अन्तर्गत कितना रहस्य छिपा हुआ है जिससे कि हर्षसूचक भाव की सुन्दर व्यञ्जना की गई है।

श्रृङ्गार रस के बाद कवि ने वीररस का भी यथेष्ट रूप से प्रयोग किया है। कवि के उत्साहपूर्ण जीवन से विशेष अभिरुचि थी प्रमाण स्वरूप कवि ने 'रामायण वर्णन में' श्रीराम के वीर चरित्रों का ही विशेष वर्णन किया है। सीता स्वयम्वर, परशुराम मिलन, मारीच वध, हनुमान का लंका प्रवेश, सेतुबन्ध, अंगद रावण संवाद, राम रावण युद्धादि ही वीर स्थलों को लिया है जो कि वीर प्रधान अंश हैं। भरत चरित्र, भरत मिलाप, दशरथ मृत्यु आदि स्थलों को नहीं लिया। कारण यही हो सकता है कि कवि पर इसका प्रभाव न पड़ा हो। वीर रस के अन्तर्गत

युद्ध वर्णन में कवि ने युद्ध का ही वर्णन न करके युद्ध की तैयारी को ही बडी विशदता के साथ वर्णित किया है और इसमें वीर रस का अच्छा परिपाक भी हुआ है। साथ ही साथ आपके युद्ध सम्बन्धी वर्णन चित्र सा उपस्थित कर देते हैं इस प्रकार वीर रस के परिपाक मे भी कवि ने अच्छी सफलता पाई है।

वीर रस के पश्चात् कवि ने दो तीन जगह भयानक रस का भी चित्रण किया है। एक तो धनुभंग के स्थल पर हुआ है यथा—

हहरि गयौ हरि हिए, धधकि धीरत्तन मुक्किय।
ध्रुव नरिंद थरहरयौ, मेरु धरनी धसि घुक्किय॥
अक्खिय पिक्खि नहिं सकइ, सेस नक्खित्तन लग्गिय तल।
सेनापति जय सद्द, सिद्ध उच्चरत बुद्धि बल॥
उद्दड चड भुजदड भरि, धनुप राम करपत प्रबल।
टुट्टिय पिनाक निर्घात सुनि, लुट्टिय दिग्गत दिग्गज विकल॥

इस प्रकार शान्त रस के भी अनेकों कवित्त उदाहरण स्वरूप इस रत्नावली में देखे जा सकते हैं। वीर रस की भाँति कवि को शान्त रस के भी परिपाक में अपूर्व सफलता मिली है।

भाषा—कवि ने व्रज भाषा का ही प्रयोग किया है यद्यपि यत्र तत्र सस्कृत तथा अन्य भाषा के भी शब्द एव पद आ गये हैं। इसीसे काव्य में माधुर्य और प्रसाद गुण प्रधान हो गये हैं। भाषा भाव के अनुकूल हो गई है। जान पडता है कि कवि को भाषा पर विस्तृत अधिकार है, ऐसी सुन्दर, सरस और सुव्यवस्थित भाषा बहुत ही थोडे कवियों की पाई जाती है। इनकी भाषा मे बहुत कुछ माधुर्य व्रजभाषा का ही है। सस्कृत पदावली पर आश्रित नहीं। अनुप्रास और यमकालकारादि की अधि

कत। होते हुए भी भापा की सजीवता तथा स्वाभाविकता बिगड़ने नहीं पाई है।

ओजपूर्ण भापा लिखने में भी कवि हस्तकुशल है। इस प्रकार के भापा प्रयोग में आपने वर्णों के द्वित्व रूपों का सहारा लिया है—अख्खि, पिख्खि, विति, बुल्लिय इत्यादि पर ऐसे पद छन्द ही में प्रयुक्त हुए हैं न कि कवित्त में।

इस प्रकार कवि की भापा में तीनों गुण यथेष्ट रूप से वर्तमान हैं जिससे भापा सजीव ही बनी हुई है। आप मे केशव की भाँति शब्दों को क्लिष्टता तथा भावो की दुरूहता नही बल्कि शब्दों एवं भावों का सुन्दर एव अनुपमेय सामञ्जस्य है। शब्द सरल एव सुबोध हैं। तद्भव का विशेप प्रयोग है। इस प्रकार कवि की भापा सुव्यवस्थित एवं परिमार्जित है।

इन कविवर के विषय मे एक विशेप बात ध्यान देने की यह है कि इन्होने केवल घनाक्षरी या कवित्त ही में अपनी सारी रचना की है। कारण इसका यही था कि अन्य छन्दों में उनका पूरा नाम सुन्दरता, सरलता एव सफलता के साथ न आता था तथा दूसरे कवियों से अपने छन्दो को चोरी से बचाने के लिये अपना नाम प्रत्येक कवित्त मे अवश्य रखना चाहते थे। ऐसा अनुमान भी है कि 'सेनापति' उनका उपनाम ही था।

उपर्युक्त कथन से यही निष्कर्ष निकलता है कि अर्थ गाम्भीर्य के विचार से इन कवि का स्थान विहारी व मतिराम से बढ़कर होना चाहिये जैसा कि आपके श्लिष्ट पदों से प्रगट होता है। इसके अतिरिक्त काव्य कला की दृष्टि से भी आपका स्थान विहारी व मतिराम से ऊँचा ठहरता है क्योंकि अलंकारो का, विशेपकर

श्लेपालकार का ऐसा अपूर्व प्रयोग उदाहरण स्वरूप हिन्दी-साहित्य भर में खोजने से नहीं मिलेगा। आपने मुक्तक छन्दों की रचना करके उसमे भी अपनी अद्भुत प्रतिभा एवं काव्य कला प्रदर्शित की है और इसमें अपूर्व सफलता भी मिली है। यद्यपि आचार्य केशव ने भी एकाक्षरी लिखी है परन्तु आचार्य के पद श्लिष्ट होने के कारण लोकप्रिय नहीं हो सके। इन कवि के पद प्रसाद गुण पूर्ण होने से अधिक हृदयग्राही हुए है। इस प्रकार विचार करने से हम कह सकते हैं कि कविवर सेनापति एक श्रेष्ठ श्रेणी के कवि हैं और इनका स्थान हिन्दी-साहित्य मे मेरी राय मे वही होना चाहिये जो कि बिहारी मतिराम आदि का है। यह भी जल्दी ही आशा की जाती है कि इनके दूसरे काव्य ग्रन्थ 'काव्य कल्पद्रुम' के प्राप्त हो जाने पर इनकी महत्ता और भी प्रकट होगी और हिन्दी साहित्य में श्रेष्ठ स्थान पर अवश्य सुशोभित होंगे। इति।

दारागञ्ज–प्रयाग
श्रीकृष्ण जन्माष्टमी
स० १९९८

१२—८—४१
शेषनारायण शोकहा

सेनापति-रत्नावली

प्रथम सोपान

ऋतु वर्णन

बरन बरन फूले सब उपवन बन,
  सोई चतुरंग सग दल लहियत है।
बंदी जिमि बोलत बिरद बीर कोकिल हैं,
  गुंजत मधुप गान गुन गहियत है॥
आवै आस-पास पुहुपन की सुबास सोई,
  सोंधे के सुगंध माँझ सने रहियत है।
सोभा कौ समाज, सेनापति सुख-साज आज,
  आवत बसत रितुराज कहियत है॥

(२)

मलय समीर सुभ सौरभ धरन धीर,
  सरवर नीर जन मज्जन के काज के।
मधुकर पुंज पुनि मंजुल करत गुंज,
  सुधरत कुंज सम सदन समाज के॥
व्याकुल बियोगी, जोग कै सकै न जोगी तहाँ,
  बिहरत भोगी सेनापति सुख साज के।

बरन बरन—रग बिरगे। बदी—भाट। पुहुपन—फूल। समीर—पवन। सरवर—तालाब।

सघन तरु लसत, बोलैं पिक कुल सत,
देखौ हिय हुलसत आए रितुराज के ।

(३)

लसत कुटज, घन चंपक, पलास, वन,
फूलीं सब साखा जे हरति जन चित्त हैं।
सेत, पीत, लाल, फूल-जाल हैं बिसाल, तहाँ
आछे अलि अछर, जे कारज के मित्त हैं॥
सेनापति माधव महीना भरि नेम करि,
बैठे द्विज कोकिल करत घोष नित्त हैं।
कागद रंगीन मैं प्रवीन हैं बसंत लिखे,
मानौं काम-चक्कवै के बिक्रम कवित्त हैं ॥

(४)

लाल लाल टेसू फूलि रहे हैं बिसाल, संग
स्याम रंग भेंटि मानौं मसि मैं मिलाए हैं।
तहाँ मधु काज आइ बैठे मधुकर-पुंज,
मलय पवन उपवन वन धाए हैं ॥
सेनापति माधव महीना मैं पलास तरु,
देखि देखि भाउ कविता के मन आए हैं।
आधे अन-सुलगि, सुलगि रहे आधे, मानौ
बिरही दहन काम क्वैला परचाए हैं॥

सेत—सफेद। अछर—अत्तर। प्रवीन—चतुर। मसि—स्याही।

(५)

केतकि, असोक, नव चंपक, बकुल कुल,
कौन धौं बियोगिनी कौं ऐसौ बिकराल है ;
सेनापति साँवरे की, सूरति की सुरति की,
सुरति कराइ करि डारत बिहाल है ॥
दच्छिन-पवन एती ताहू की दवन जऊ,
सूनौ है भवन परदेस प्यारौ लाल है ।
लाल हैं प्रवाल फूले देखत बिसाल, जऊ
फूले और साल पै रसाल उर साल है ॥

(६)

सरस सुधारी राजमंदिर मैं फूलवारी,
मोर करैं सोर, गान कोकिल बिराव के ।
सेनापति सुखद समीर है, सुगंध मंद,
हरत सुरत-स्रम-सीकर सुभाव के ॥
प्यारौ अनुकूल, कौंहू करत करन-फूल,
कौंहू सीसफूल, पाँवडेऊ मृदु पाँव के ।
चैत मैं प्रभात, साथ प्यारी अलसात, लाल
जात मुसकात, फूल बीनत गुलाब के ॥

बकुल—मौलिसिरी । सुरति—याद । बिहाल—विकल । रसाल—आम । सुरत-स्रम सीकर सुभाव के—रति के परिश्रम से उत्पन्न पसीने की बूँदें ।

(७)

धरयौ है रसाल मौर सरस सिरस रुचि,
ऊँचे सब कुल मिले गनत न अंत है।
सुचि है अवनि बारी भयौ लाज होम तहाँ,
भौंरी देखि होत अलि आनँद अनंत है ॥
नीकी अगवानी होत सुख जनवासौ सब,
सजी तेल ताई चैन मैंन मयमंत है।
सेनापति धुनि द्विज साखा उच्चरत देखौ
बनी दुलहिन बना दूलह बसत है ॥

(८)

तरु नीके फूले बिबिध, देखि भए मयमंत।
परे बिरह बस काम के, लागे सरस बसंत ॥
लागे सरस बसंत, सघन उपवन बन राजत।
कोकिल के कल गीत, मधुर सेनापति साजत ॥
तजे सकुच के भाउ, भाउ तजि मान मनी के।
सुर, नर, मुनि, सुख संग रंग राचैं तरुनी के ॥

मौर—मुकुट। अगवानी—स्वागत। मैन—कामदेव। मयमंत—मतवाले। तरुनी—युवती।

(९)

दच्छिन धीर समीर पुनि, कोकिल कल कूजंत।
कुसुमित साल रसाल जुन, जो बन सोभावंत ॥
जोबन सोभावंत, कंत-कामिनि मनोज बस।
सेनापति मधु मास, देखि बिलसत प्रमोद रस ॥
दरस हेत तिय लिखति, पीय सियरावहु अच्छिन।
हरहु हीय संताप, आइ हिलि मिलि सुख दच्छिन ॥

(१०)

जेठ नजिकाने सुधरत खसखाने, तल
ताख तहखाने के सुधारि झारियत हैं।
होति है मरम्मति बिबिध जल जंत्रन की,
ऊँचे ऊँचे अटा, ते सुधा सुधारियत हैं ॥
सेनापति अतर, गुलाब, अरगजा साजि,
सार तार हार मोल लै लै धारियत हैं।
ग्रीषम के बासर बराइबे कौं सीरे सब,
राज-भोग काज साज यौं सम्हारियत हैं ॥

सोभावत—सुन्दर प्रतीत होते हैं। मनोज—कामदेव। सियरावहु—सन्तुष्ट हो। नजिकाने—समीप आये।

(११)

वृप कौ तरनि तेज सहसौ किरन करि,
ज्वालन के जाल बिकराल बरसत है।
तचति धरनि, जग जरत झरनि, सीरी
छाँह कौं पकरि पंथी-पछी बिरमत है॥
सेनापति नैक दुपहरी के ढरत, होत
धमका बिषम, ज्यौं न पात खरकत है।
मेरे जान पौनौ सीरी ठौर कौ पकरि कौनौं,
घरी एक बैठि कहूं घामै बितवत है॥

(१२)

सेनापति ऊँचे दिनकर के चलति लुव,
नद, नदी, कुवैं कोपि डारत सुखाइ कै।
चलत पवन, मुरझात उपवन बन,
लाग्यौ है तवन, डार्‌यौ भूतलौं तचाइ कै॥
भीषम तपत रितु ग्रीषम सकुचि तातैं,
सीरक छिपी है तहखानन मैं जाइ कै।
मानौं सीत काल, सीत लता के जमाइबे कौं,
राखे हैं बिरचि बीज धरा मै धराइ कै॥

तरनि—सूर्य। तचति—तपता है। लुवैं—लू।

(१३)

प्रात नृप न्हात, करि असन बसन गात,
पैंधि सभा जात जौ लौं बासर सुहात है।
पीछे अलसाने, प्यारी संग सुख साने,
बिहरत खसखाने, जब घाम नियरात है॥
लागे हैं कपाट, सेनापति रंग-मंदिर के,
परदा परे, न खरकत कहूँ पात है।
कोई न भनक, ह्वै कै चनक-मनक रही,
जेठ की दुपहरी कि मानों अधरात है॥

(१४)

काम कै प्रथम जाम, बिहरैं उसीर धाम
साहिब सहित बाम, घाम बितवत हैं।
नैक होत साँझ, जाइ बैठत सभा के माँझ,
भूपन बसन फेरि और पहिरत हैं॥
ग्रीपम की बासर बड़ाई बरनी न जाइ,
सेनापति कबि कहिबे कौ उमहत हैं।
सोइ जागे जानैं दिन दूसरौ भयौ है, बातैं
काल्हि की सी करी भोरैं भोर की कहत हैं।

कपाट—किवाड़। उमहत—उत्साहित होना। भोर—सबेरा।

(१५)

सेनापति तपन तपति उतपति तैसी,
छायौ उत पति, तातें बिरह बरत है।
लुवन की लपटैं, ते चहूं ओर लपटैं पै,
ओढ़े सलिल पटैं न चैन उपजत है।
गगन गरद धूंधि, दसौं दिसा रही रूँधि,
मानौ नभ भार की भसम बरसत है।
घरनि घताई छिति व्योम की तताई, जेठ
आयौ आततार्इ पुट पाक सौ करत है॥

(१६)

तपै इत जेठ, जग जात है जरनि जर्‌यौ,
ताप की तरनि मानौं मरनि करत है।
इतहिं असाढ़ उठै नूतन सघन घटा,
सीतल समीर हिय धीरज धरत है।
आधे अंग ज्वालन के जाल बिकराल आधे,
सीतल सुभग मोद हीतल भरत है।
सेनापति ग्रीषम तपत रितु भीषम है,
मानौ बड़वान सौं वारिधि बरत है॥

उतपति—जन्म। सलिल—जल। धूंधि—छाई हुई।
छिति—पृथ्वी। हीतल—हृदय।

(१७)

सुंदर बिराजैं राज-मंदिर सरस ताके,
बीच सुख दैनी सैनी सीरक उसीर की।
उछरैं सलिल, जल जंत्र ह्वै विमल उठैं,
सीतल सुगंध मंद लहर समीर की।
भीने हैं गुलाब तन सने हैं अरगजा सौं,
छिरकी पटीरनीर टाटी तीर तीर की।
ऐसे बिहरत दिन ग्रीपम के बितवत,
सेनापति दंपति मया तैं रघुबीर की॥

(१८)

देखैं छिति अंबर जलै है चारि ओर छोर,
तिन तरबर सब ही कौ रूप हर्‍यौ है।
महा झर लागै जोति भादव की होति चलै,
जलद पवन तन सेक मनौं पर्‍यौ है।
दारुन तरनि तरैं नदी सुख पावैं सब,
सीरी घन छाँह चाहिबौई चित धार्‍यौ है।
देखौ चतुराई सेनापति कविताई की जु,
ग्रीपम विषम बरषा की सम कर्‍यौ है॥

सैनी सीरक उसीर की—ठंडी खस की टट्टियाँ। पटीर—चन्दन की एक जाति।

(१९)

रजनी के समै विन सीरक न सोयौ जात,
　　प्यारी तन सुथरी निपट सुखदाई है।
रगित सुवास राखैं भूपति रुचिर साल,
　　सूरज की तपति किरनि तन ताई है।
सीतल अधिक यातैं चंदन सुहात परै,
　　आँगन ही कल ज्यौं त्यौं अगिनि बराई है।
ग्रीषम की रितु हिम रितु दोऊ सेनापति,
　　लीजियै समुझि एक भाँति सी बनाई है॥

(२०)

छूटत फुहारे सोई बरसा सरस रितु,
　　और सुखदाई है सरद छिरकाइ की।
हेमंत सिसिर हूं तैं सीरे खसखाने, जहाँ
　　छिन रहै तपति मिटति सब काइ की।
फूलै तरवर, फूलवारी फूल सौं भरत,
　　सेनापति सोभा सो बसंत के सुभाइ की।
ग्रीषम के समय साँझ, राज महलन माँझ,
　　पैयति है सोभा षट-रितु समुदाइ की॥

अगिनि—आग। सीरे—ठंडे।

(२१)

ग्रीपम तपति हर, प्यारे नव जलधर,
सेनापति सुखकर जे हैं दपतीन कौं।
सुव तरवर जीव सजत सकल घर,
धरत कदम तरु कोमल कलीन कौं।
सुनि घनघोर, मोर कूकि उठे चहूं ओर,
दादुर करत सोर भोर जामिनीन कौं।
काम धरे वाढ़ तरवारि, तीर जम डाढ,
आवत असाढ़ परी गाढ़ विरहीन कौं॥

(२२)

सुधा के भवन उपवन बीच छूटै नल,
सलिल सरल धार तातैं निकरत हैं।
ऊरध गमन वारि ताकी छवि कौं निहारि,
सेनापति कछू बरनन कौं करत है॥
मांत कोऊ तरु बिन सींच्यौ रहि गयौ होइ,
ताहि फेरि सीचौं यह जीय मैं धरत है।
यातै मानौं जल, जल जंत्र के कपट करि,
बाग देखिबे कौं ऊपर कौं उछरत हैं॥

कदम तरु—कदब का पेड। धरे वाढ़—धार पैनी करना। ऊरध—ऊँचा। वारि—जल। छवि—शोभा।

(२३)

पवन परम तातौ लगत, सहि नहिं सकत सरीर।
बरसत रवि सहसौ किरनि, अवनि तपनि के तीर॥
अवनि तपनि के तीर, नीर मज्जन सीतल तन।
सेनापति रति करति, नारि धर मुक्ता भूषन॥
भूषन मंदिर वास, सकल सूकत-सरिता गन।
पात पात मुरझात जात बेली बन उपबन॥

(२४)

वृप चढ़ि महा भूतपति ज्यौं तपति अति,
सुखवत सिंधु सब सरवर सोत है।
धनुष कौ पाइ खग तीर सौं चलत, मानौं,
ह्वै रही रजनि दिन पावत न पोत है॥
सेनापति उकति जुझाते सुभ-गति, मति,
रीझत सुनत कवि कोविद को गोत है।
यातैं जानी जाति जिय जैठ मैं सहस कर,
दिनकर पूस मैं सहस-पाइ होत है॥

तातौ—गरम। मज्जन—नहाना। वृप—बैल या वृष राशि। भूतपति—महादेवजी। खग—पक्षी, सूर्य। पोत—पार, जहाज, पारी। सहसकर—सूर्य।

(२५)

आई रितु पाउस कृपा अस न कीनी कंत,
छाइ रह्यौ अंत, उर बिरह दहत है।
गरजत घन तरजत है मदन लर,
जत तन मन नीर नैननि बहत है॥
अंग-अंग भंग, बोलै चातक बिहँग प्रान,
सेनापति स्याम संग रंगहिं चहत है।
धुनि सुनि कोकिल की बिरहिनि को किलकी,
केका के सुने तैं प्रान एकाके रहत है॥

(२६)

दामिनी दमक, सुर चाप की चमक, स्याम,
घटा की झमक अति घोर घनघोर तैं।
कोकिला, कलापी, कल कूजत हैं जित-जित,
सीकर ते सीतल समीर की झकोर तैं॥
सेनापति आवन कह्यौ है मन भावन, सु,
लाग्यौ तरसावन बिरह-जुर जोर तैं
आयौ सखी सावन, मदन सरसावन,
लग्यौ है बरसावन सलिल चहूं ओर तैं॥

पाउस—वर्षा ऋतु। किलकी—बेचैनी। सुरचाप—वज्र
केका-मोर।

(२७)

दामिनी दमक सोई मंद विहँसनि,
बगमाल है विसाल सोई मोतिन कौ हारौ है।
बरन बरन घन रंगित बसन तन,
गरज गरूर सोई बाजत नगारौ है॥
सेनापति सावन कौं बरसा नवल वधू,
मानौ है बरति साजि सकल सिंगारौ हैं।
त्रिबिधि बरन परयौ इन्द्र कौ धनुष लाल,
पन्ना सों जटित मानौ हेम खगवारौ है॥

(२८)

दूरि जदुराई सेनापति सुखदाई देखौ,
आई रितु पाउस न पाई प्रेम पतियाँ।
धरि जलधर की सुनत धुनि धरकी है,
घर की सोहागिल छोह भरी छतियाँ॥
आई सुधि वर की, हिये में आनि खरको,
"तू मेरी प्रान प्यारी" यह पीतम की बतियाँ।
बीती अवधि आवन की लाल मन भावन की,
डग भई बावन की सावन की रतियाँ॥

बगमाल—बागों की माला। खगवारौ—गले में पहनने का भूषण विशेष। प्रेम पतियाँ—प्रेम पत्रिकाएँ। दरकी—विदीर्ण हुई। छोह—दुःख। औधि—अवधि।

(२९)

गगन अँगन घनाघन तें सघन तम,
सेनापति नैक हू न नैन मटकत हैं।
दीप की दमक जीगनानि की झमक छाँड़ि,
चपला चमक और सोनौ अटकत हैं॥
रवि गयौ दबि मानौ ससि सोऊ धसि गयौ,
तारे तोरि डारे से न कहूं फटकत हैं।
मानौ महा तिमिर तें भूलि गई बाट,
तातें रवि ससि तारे कहूँ भूले भटकत हैं॥

(३०)

नीके हौ निठुर कंत मन लै पधारे अंत,
मैन मयमंत कैसे बासर बराइहौं।
आसरौ अवधि कौ सो अवध्यौ बितीत भई,
दिन दिन पीत भई रही मुरझाय हौं॥
सेनापति प्रानपति साँची हौं कहति एक,
पाइ कै तिहारे पाँइ प्रानन कै पाइ हौं।
इकली डरी हौं धनु देख कै डरी हौं खाइ,
बिष की डरी हौं घनस्याम मरि जाइ हौं॥

गगन अँगन—आकाश प्रांगण। घनाघन—बरसने वाले बादल। जीगनान—जुगनू। मयमत—मदमत्त। बासर—दिन। आसरो—भरोसा। पीत—पीला।

(३१)

सेनापति उनये नये जलद सावन के,
चारि हू दिसानि घुमरत भरे तोइ कै।
सोभा सरसाने न बखाने जात काहू भाँनि,
आने हैं पहार मानो काजर के ढोइ कै॥
घन सों गगन छयौ तिमिर सघन भयौ,
देखि न परत मानो रवि गयौ खोइ कै।
चारि मास भरि स्याम निसा के भरम मानि,
मेरे जानि याही तें रहत हरि सोइ कै॥

(३२)

उन एते दिन लाये सखी अजहूँ न आये,
उनए ते मेह भारी काजर पहार से।
काम के बसीकरन डारें अब सीकरन,
तातै ते समीर जे हैं सीतल तुसार से।
सेनापति स्याम जू कों बिरह छहरि रह्यौ,
फूल प्रतिकूल तन डारत पजार से।
मोर हरषन लागे घन बरसन लागे,
बिन बर खन लागे बरष हजार से॥

उनए—घिर आए। तोइ—जल। भरम—धोखा। सीकरन—बूँदे। तुसार—पाला। छहरि—बिखर जाना। पजार—जला देना। खन—क्षण।

(३३)

अब आयौ भादौं मेह बरसै सघन कादौं,
सेनापति जादौपति बिन क्यों बिहात है।
रवि गयौ दबि, छबि अंजन तिमिर भयौ,
भेद निसि दिन कौ न क्यों हू जान्यौ जात है।
होति चकचौंधी जोति चपला के चमके तैं,
सूझि न परत पीछे मानौं अधरात है।
काजर तैं कारौ अधियारौ भारौ गगन मैं,
घुमरि घुमरि घन घोर घहरात है॥

(३४)

सारँग धुनि सुनावै घन रस बरसावै,
मोर मन हरषावै अति अभिराम है।
जीवन अधार बड़ी गरज करन हार,
तपति हरनहार देत मन काम है॥
सीतल सुभग जाकी छाया जग सेनापति,
पावत अधिक तन मन बिसराम है।
संपै संग लीने सनमुख तेरे बरसाऊ,
आयौ घनस्याम सखि मानौ घनस्याम है॥

चपला—बिजली। घन रस—खूब पानी।

(३५)

बरसत घन, गरजत सघन, दामिनि दिपै अकास।
तपति हरी, सफलौ करी, सब जीवन की आस॥
सब जीवन की आस, पास नूतन तिन अनगन।
सोर करत पिक मोर, रटत चातक विहंग गन॥
गगन छिपे रवि चंद, हरप सेनापति सरसत।
उमगि चले नद-नदी, सलिल पूरन सर बरसत॥

(३६)

सारँग धुनि सुनि पीय की, सुधि आवति अनुहारि।
तजि धीरज, बिरहिनि बिकल, सबै रहैं मनुहारि॥
सबै रहैं मनुहारि, जे न मानैं जुवती गन।
ते आपुन तैं जाइ धाइ भेंटत प्रीतम तन॥
मत न मान के चलहिं, देखि जलधर चपला रंग।
सेनापति अति मुदित देखि बासरै निसा रंग।

दिपै—शोभित है। आस—आशा। अनगन—अगणित।
सारंग—मेघ, पपीहा। अनुहारि—आकृति। बासरै—दिन में।

(३७)

पाउस निकास तातैं पायौ अवकास भयौ,
जोन्ह कौं प्रकास, सोभा ससि रमनीय कौं।
बिमल अकास, होत बारिज बिकास,
सेनापति फूले कास हित हंसन के हीय कौं॥
छिति न गरद, मानौ रंगे हैं हरद सालि,
सोहत जरद को मिलावै हरि पीय कौं।
मत्त है दुरद, मिट्यौ खंजन दरद रितु,
आई है सरद सुखदाई सब जीय कौं॥

(३८)

खंड खंड सब दिग-मंडल जलद सेत,
सेनापति मानौं स्रंग फटकि पहार के।
अंबर अडंबर सों उमड़ि घुमड़ि छिन,
छिछकैं छछारे छिति अधिक उछार के॥
सलिल सहल मानों सुधा के महल नभ,
तूल के पहल किधौं पवन अधार के।
पूरब कौं भाजत हैं, रजत से राजत हैं,
गग गग गाजत गगन घन क्वार के॥

पाउस—वर्षा। निकास—समाप्ति। जोन्ह—जुन्हैया, चाँदनी। सालि—जड़हन। दुरद—हाथी। स्रंग—चोटी। छिछकैं—छिड़कैं। तूल—रुई। रजत—चाँदी।

(३९)

बिबिधि बरन सुर चाप के न देखियत,
　　मानौं मनि भूषन उतारिबे के भेस हैं।
उन्नत पयोधर बरस रिसि गिरि रहे,
　　नीके न लगत फीके सोभा के न लेस हैं॥
सेनापति आए तैं सरद रितु फूलि रहै,
　　आस पास कास खेत खेत चहूं देस हैं।
जोबन हरन कुंभ, जोनि उदए तैं भई,
　　बरसा बिरध ताके सेत मानौं केस हैं॥

(४०)

कातिक की राति थोरी थोरी सियराति, सेना
　　पति है सुहाति सुखी जीवन के गन हैं।
फूले हैं कुमुद, फूली मालती सघन बन,
　　फूलि रहे तारे मानौं मोती अनगन हैं॥
उदित बिमल चंद, चांदिनी छिटकि रही,
　　राम कैसौ जस अध ऊरध गगन हैं।
तिमिर हरन भयौ, सेत है बरन सब,
　　मानहु जगत छीर सागर. मगन हैं॥

सुर चाप—इन्द्र धनुष। पयोध—बादल। कुंभजोनि—प्रगस्त नक्षत्र। कास—काँसा। मगन—प्रसन्न।

(४१)

चरन्यौ कवि न कलाधर कौं कलंक तैसौ,
को सकै बरनि, कवि हू की मति छीनी है।
सेनापति बरनी अपूरब जुगति ताहि,
कोविद विचारौ कौन भाँति बुद्धि दीनी है॥
मेरे जान जेतिक सौ सोभा होत जानी राखि,
तेतिकै कलान रजनी की छवि कीनी है।
चढ़ती के राखे रैनि हू तैं दिन ह्वै हैं, यातैं
आगरी मयंक तैं कला निकासि लीनी है॥

(४२)

सरसी निरमल नीर पुनि चंद चाँदिनो पीन।
घन बरसै आकास अरु अवनी रज है लीन॥
अब नीरज है लीन, बिमल तारागन सोभा।
राजहस पुनि लीन, सकल हिमकर की जो भा॥
इत सरवर, उत गगन दुहूँ, समता है परसी।
सेनापति रितु सरद, अग अंगन छबि सरसी॥

कलाधर—चन्द्रमा। छीनी—नष्ट हुई। आगरी—भंडार। सरसी—सरोवरों का। पीन—शोभायुक्त। अवनी रज—धूल भा—प्रकाश। परसी—छू गई।

(४३)

प्रात उठि आइबे कौं, तेलहि लगाइबे कौं,
मलिमलि न्हाइबे कौं गरम हमाम है।
ओढ़िबे कौं साल, जे बिसाल हैं अनेक रंग,
बैठिबे कौं सभा, जहाँ सूरज कौ घाम है॥
धूप कौ अगर, सेनापति सोंधौ सौरभ कौं,
सुख करिबे कौं छिति अंतर कौ धाम है।
आए अगहन, हिम पवन चलन लागे,
ऐसे प्रभु लोगन कौं होत बिसराम है॥

(४४)

सूरै तजि भाजी, बात कातिक मैं जब सुनी,
हिम की हिमाचल तैं चमू उतरति है।
आए अगहन, कीने गहन दहन हू कौं,
तिन हू तैं चली, वहूं धीर न धरति है॥
हिय मैं परी है हूल दौरि गहि, तजीं तूल,
अब निज मूल सेनापति सुमिरति है।
पूस मैं त्रिया के ऊँचे कुच-कनकाचल मैं,
गढ़वै गरम भई, सीत लौं लरति है॥

हिम—बरफ। बिसराम—आराम। चमू—सेना। हूल—पीड़ा।

(४५)

सीत कौ प्रबल सेनापति कोपि चढ़्यौ दल,
निबल अनल, गयौ सूर सियराइ कै।
हिम के समीर, तेई बरसैं बिषम तीर,
रही है गरम भौन कौनन मैं जाइ कै॥
धूम नैन बहैं, लोग आगि पर गिरे रहैं,
हिये सौं लगाइ रहैं नैक सुलगाइ कै।
मानौं भीत जानि, महा सीत तैं पसारि पानि,
छतियाँ की छाँह राख्यौ पाउक छिपाइ कै॥

(४६)

आयौ सखी पूसौ, फूलि कंत सौं न रूसौ, केलि
ही सौं मन मूसौ जीउ ज्यों सुख लहत है।
दिन की घटाई, रजनी की अघटाई, सीत
ताई हू कौं सेनापति बरनि कहत है॥
याही तैं निदान प्रान बेगि दै न होत होत,
द्रौपदी के चीर कैसौ राति कौ महत है।
मेरे जान सूरज पताल तप ताल माँझ,
सीत कौ सतायौ कहलाइ कैं रहत है॥

अनल—अग्नि। रूसौ—रूठो। मूसौ—ठगौ। घटाई—कम होना। कहलाइ—पीडित होकर।

(४७)

पूस के महीना काम वेदना सही ना जाय,
भोग ही के द्यौस निसि विरह अधीन के।
भोर ही कौ सीत सो न पावत छुटन त्योंही,
राति आइ जाति है, दुखित मन दीन के।
दिन की नन्हाई सेनापति वरनी न जाइ,
रंचक जनाई मन आवै परवीन के।
दामिनी ज्यौं भानु ऐसे जात है चमकि ज्यों न,
फूलन हू पावत सरोज सरसीन के॥

(४८)

वरसै तुसार बहै सीतल समीर नीर,
कंपमान उर क्यों हू धीर न धरत है।
राति न सिराति सरसाति विथा विरह की,
मदन अराति जोर जोवन करत है॥
सेनापति स्याम हम धन हैं तिहारी हमैं,
मिलौ, बिन मिले, सीत पार न परत है।
और की कहा है, सविता हू सीत रितु जानि,
सीत कौ सतायौ धन रासि मैं परत है॥

द्यौस—दिन। नन्हाई—छोटापन। अराति—वैरी। धन—धन राशि या युवती। सविता—सूर्य।

(४९)

मारग सीरप पूस मैं सीत हरन उपचार ।
नीर समीरन तोर सम, जनमत सरस तुसार ॥
जन-मत सरसतु सार, यहै रमनी सँग रहियै ।
कीजै जोवन भोग, जनम जीवन फल लहियै ॥
तपन, तूल, तंबूल, अनल अनुकूल होत जग ।
सेनापति धन सदन वास, न बिदेस, न मारग ॥

(५०)

सिसिर मैं ससि कौ सरूप पावै सविता हू,
दामिनी की दुति धाम हू मैं दमकति है ।
सेनापति होत है सीतलता सहसगुनी,
रजनी की झांई बासर मैं झमकति है ॥
चाहत चकोर, सूर ओर दृग-छोर करि,
चकवा की छाती तजि धीर धसकति है ।
चंद के भरम होत मोद है कमोदिनी कौं,
ससि संक पंकजिनी फूलि न सकति है ॥

मारग सीरप—अगहन । तपन, तूल, तबूल, अनल अनुकूल होत जग—जाड़ों में धूप, रुई, पान और अग्नि ही के सेवन से आराम मिलता है । झाँई—प्रतीत होना ।

(५१)

सिसिर तुषार के बुखार से उखारत हैं,
पूस बीते होत सून हाथ पाय ठिरि कै।
द्यौस की छुटाई की बड़ाई बरनी न जाय,
सेनापति पाई कछु सोचि कै सुमिरि कै॥
सीत तें सहस कर सहस-चरन ह्वै कै,
ऐसे जात भाजि तम आवत है घिरि कै।
जौ लौं कोक कोकी को मिलत तौ लौं होति राति,
कोक अधबीच ही तें आवत है फिरि कै।

(५२)

अब आयौ माह प्यारे लागत है नाह, रवि,
करत न दाह जैसौ अवरेखियत है।
जानियै न जात बात कहत बिलात दिन,
छिन सौं न तातें तन को बिसेखियत है॥
कलप सी राति, सो ते सोये न सिराति क्यों हूं,
सोइ सोइ जागे पै न प्रात पेखियत है।
सेनापति मेरे जान दिन हू ते राति भई,
दिन मेरे जान सपने पै देखियत है॥

बुखार—गरमी। ठिरि कै—ठिठुर कर। सहसकर—सूर्य। कल्प—कल्प, ब्रह्मा का एक दिन। पेखियत—दिखलाई पड़ना।

(५३)

कब दिन दूलह के अरुन बरन पाइ,
पाइहैं सुभग जिन्हैं पाइ पीर जाति है।
ऐसे मनोरथ, माह मास की रजनि, जिनि,
ध्यान सौं गँवाई, आन प्रीति न सुहाति है॥
सेनापति ऐसी पदमिनी कौं दिखाई नैंक,
दूरि ही तैं दैकै, जात होत इहि भाँति है।
कछु मन फूली रही, कछु अन-फूली, जैसे,
तन मन फूलिबे की साध न बुझाति है॥

(५४)

धायौ हिम दल हिम भूधर तैं सेनापति,
अंग अंग जग, थिर-जंगम ठिरत है।
पैये न बताई भाजि गई है तताई, सीत,
आयौ आततार्इ, छिति-अंबर घिरत है॥
करत है ज्यारी, भेप धरि कै उज्यारी ही कौं,
घाम बार बार बैरी बैर सुमिरत है।
उत्तर तैं भाजि सूर, ससि कौं सरूप करि,
दच्छिन कै छोर छिन आधक फिरत है॥

पाइ—किरण, पा कर। पीर—पीड़ा। ठिरत—ठिठुरती है।
पैये न बताई—वर्णनातीत है। तताई—गर्मी। ज्यारी—साहस।

(५५)

आयौ जोर जड़कालौ परत प्रबल पालौ,
लोगन कौं लालौ पर्‌यौ जियै कित जाइ कै।
ताप्यौ चाहैं बारि कर, तिन न सकत टारि,
मानौं हैं पराये, ऐसे भये ठिठराइ कै॥
चित्र कैसौ लिख्यौ, तेजहीन दिनकर भयौ,
अति सियराइ गयौ घाम पतराइ कै।
सेनापति मेरे जान सीत कै सताये सूर,
राखे हैं सकोरि कर अंबर छपाइ कै॥

(५६)

परे तैं तुषार भयौ झार पतझार रह्यौ,
पीरी सब डार, सो वियोग सरसति है।
बोलत न पिक, सोई मौन ह्वै रह्यौ है आस-
पास निरजास, नैन नीर बरसति हैं।
सेनापति केली बिन, सुन री सहेली! माह,
मास न अकेली बनबेली बिलसति है।
बिरह तैं छीन तन, भूषन बिहीन दीन,
मानहु बसंत-कंत काज तरसति हैं॥

जड़कालौ—जाड़े का दिन। पालौ—कुहिरा। तिन—तिनका। पतराइ—पतला हो जाता है। निरजास—निराधार।

(५७)

लागैं ना निमेष, चारि जुग सौं निमेष भयौ,
कही न परति कछू जैसी तुम कंत की।
मिलन की आस तैं उसास नाहीं छूटि जात,
कैसे सहौं सासना मदन मयमंत की॥
बीती है अवधि, हम अबला अवध, ताहि,
बधि कहा लैहौ, दया कीजै जीव जंत की।
कहियौ पथिक परदेसी सौं कि धन पीछे,
है गई सिसिर कछु सुधि है बसंत की॥

(५८)

सोए संग सब राती सीरक परति छाती,
पैयत रजाई नेक आलिंगन कीने तैं।
उर सौं उरोज लागि होत हैं दुसाल वेई,
सुचरी अधिक देह कुन्दन नवीने तैं॥
तन सुख रासि जाके तन के तन कौं छुवैं,
सेनापति थिरमा रहै समीप लीने तैं।
सब सीत हरन बसन कौं समाज प्यारी,
सीत क्यौं न हरै उर अंतर के दीने तैं॥

निमेष—पलक या क्षण। सासना—ताड़ना। अवधि—निश्चित समय। अवध—अवध्य। सीरक—ठंडी। रजाई—सुख। कुंदन—सोना।

(५९)

तब न सिधारी साथ, मीड़ति है अब हाथ,
　　सेनापति जदुनाथ बिना दुख ए सहैं।
चले मन रंजन के, अंजनि की भूली सुधि,
　　मंजनि की कहा उन्हीं के गूँदे केस हैं॥
बिछुरे गुपाल, लागै फागुन कराल तातैं,
　　भई हैं बिहाल, अति मैले तन भेस हैं।
फूल्यो है रसाल, सो तौ भयो उर साल, सखी
　　डार न गुलाल प्यारे लाल परदेश हैं॥

(६०)

चौरासी समान, कटि किंकिनी बिराजति है,
　　साँकर ज्यों पग-जुग घुंघरू बनाई है।
दौरिबे सँभार उर अंचल उघरि गयौ,
　　उच्च कुच कुंभ मनु चाचरि मचाई है॥
लालन गुपाल, घोरि केसरि कौ रंग लाल,
　　भरि पिचकारी मुंह ओर कौं चलाई है।
सेनापति धायौ मत्त काम कौ गयंद जानि,
　　चोप करि चपैं मानौ चरखी छुटाई है॥

मीड़ति—मीजती है। गूंदे—गूथे। उरसाल—छाती का शूल। चाचरि—होली पर होने वाले खेल तमाशे। गयंद-हाथी। चोप करि—उत्साह पूर्वक। चपैं—दबा कर।

(६१)

नवल किसोरी भोरी केसरि तैं गोरी, छैल,
होरी मैं रही है मद जोवन के छकि कैं।
चंपे कैसौ ओज, अति उन्नत उरोज पीन,
जाके बोझ खीन कटि जाति है लचकि कै।
लाल है चलायौ, ललचाई ललना कौं देखि,
उघरारौ उर, उरबसी ओर तकि कैं।
सेनापति सोभा कौ समूह कैसे कह्यौ जात,
रह्यौ है गुलाल अनुराग सौं झलकि कै॥

(६२)

मकर सीत बरसत बिषम, कुमुद कमल कुम्हिलात।
बन उपवन फीके लगत, पियरे जोउत पात॥
पियरे जोउत पात, करत जाड़ौ दारुन अति।
सो दूनौ बढ़ि जात, चलत मारुत प्रचंड गति॥
भये नैंक माहौठि, कठिन लागै सुठि हिमकर।
सेनापति गुन यहै, कुपित दंपति संगम कर॥

खीन—पतली। पियरे—पीले। माहौठि—जाड़ों में बरसने वाला पानी।

द्वितीय सोपान

श्रृंगार वर्णन

(१)

अंजन सुरंग जीते खंजन, कुरंग मीन,
नैक न कमल उपमा कौ नियरात हैं।
नीके अनियारे अति चपल ढरारे प्यारे,
ज्यों ज्यों मैं निहारे त्यों त्यों खरौ ललचात हैं॥
सेनापति सुधा से कटाछनि बरसि ज्यावैं,
जिनकौ निरखि हियौ हरपि सिरात है।
कान लौ विसाल, काम भूप के रसाल बाल,
तेरे दृग देखे मेरो मन न अघात है॥

(२)

करत कलोल स्रुति दीरघ अमोल लोल,
छुवैं दृग छोर, छवि पावत तरौना हैं।
नाहिनै समान, उपमान और सेनापति,
छाया कछू धरत चकित मृग छौना हैं॥
स्याम हैं बरन, ज्ञान ध्यान के हरन मानो,
सूरति को धरें बसीकरन के टोना हैं।
मोहत हैं करि सैन, चैन के परम ऐन,
प्यारी तेरे नैन मेरे मन के खिलौना हैं॥

अनियारे—नुकीले। ढरारे—आकर्षक। कुरग—हिरन। हेति—सम्बन्धी। ऐन—घर।

(३)

चंचल, चकित, चल अंचल मैं झलकति,
दुरै नव नेह की निसानी प्रानपिय की।
मदन की हेनि डारे ज्ञान हू के कन रेति,
मोहे मन लेति, कहे देत बात हिय की॥
पैनी, तिरछौहीं, प्रीत-रीति ललचौहीं, कुल-
कान सकुचौहीं, सेनापति ज्यारी जियकी।
नैंक अरसौहीं, प्रेम-रस बरसौहीं, चुभी,
चित मैं हँसौहीं, चितवनि ताही तिय की॥

(४)

काम की कमान तेरी भृकुटि कुटिल आली,
तातैं अति तीछन ए तीर से चलत हैं।
घूँघट की ओट कोट, करिकै कसाई काम,
मारे बिन काम, कामी केते ससकत हैं॥
तेरे तैं न टूटै ए निकासे हूते निकसै न,
पैने निसिबासर करेजे कसकत हैं।
सेनापति प्यारी तेरे तम से तरल तारे,
तिरछे कटाछ गड़ि छाती में रहत हैं॥

हेति—सम्बन्धी। ज्यारी—साहस। कोटि—दुर्ग। तमसे—काले। तरल—पतला।

(५)

हिय हरि लेत हैं निकाई के निकेत, हँसि,
देत हैं सहेत, निरखत करि सैन हैं।
सेनापति हरिनी के दृगन तैं अति नीके राजैं,
दरद हैं हरत, करत चित चैन हैं॥
चाहत न अंजन, रसिक जन रंजन हैं,
खंजन सरस रस-राग-रीति ऐन हैं।
दीरघ, ढरारे अनियारे नैंक रतनारे,
कंज से निहारे कजरारे तेरे नैन हैं॥

(६)

केसरि निकाई किसलय की रताई लिये,
झाईं नाहिं जिनकी धरत अलकत हैं।
दिनकर सारथी तें सेना देखियत रति,
अधिक अनार की कली तैं आरकत हैं॥
लाली की लसनि, तहाँ हीरा की हसनि राजै,
नैना निरखत, हरखत, आसकत हैं।
जीते नग लाल, हरि लालहि ठगत, तेरे,
लाल लाल अधर रसाल झलकत हैं॥

निकाई—सुन्दरता। निकेत—घर। सहेत—अर्थयुक्त। कज—कमल। किसलय—कोपल। रताई—लालिमा। अलकत—महावर। आरकत—रक्तिम।

(७)

कालिंदी की धार निरधार है अधर गन,
अलि के धरत जा निकाई के न लेस हैं।
जीते अहिराज, खंडि डारे हैं सिखंडि, घन,
इन्द्रनील कीरति कराई नाहीं ए सहैं॥
एड़िन लगत सेना हिय के हरष-कर,
देखत हरत रति-कंत के कलेस हैं।
चीकने, सघन, अँधियारे ते अधिक कारे,
लसत लछारे, सटकारे तेरे केस हैं॥

(८)

नूतन जोवनवारी मिलिही जो ननवारी,
सेनापति घनवारी मनमैं विचारियै।
तेरी चितवनि ताके चुभी चित बनिता के,
है उचित बनि ताके मया कै पधारियै॥
सुधि ना निकेतन की बाढ़ी उनके तन की,
पीर मीन केतन की जाइ कै निवारियै।
तो तजि अनवरत वाके और न वरत,
कीजै लाल नयरत बाल न बिसारियै॥

सिखडि—मोर। सटकारे—चिकने और लंबे। मया—दया।
मीनकेतन—कामदेव। निवारियै—रोकिये। अनवरत—
लगातार। नवरत—नवीन प्रेम।

(९)

नंद के कुमार मार हू ते सुकुमार ठाढ़े,
  द्वारे निज द्वार, प्रीति रीति परवीन हैं।
निकसि हौं आई, देखि रही सकुचाई, सेना-
  पति जदुराई मोंहि देखि हँसि दीन हैं॥
तब तें हैं छीन छबि देखिबे कौ दीन, सब,
  सुधि बुधि हीन हम निपट अधीन हैं।
बिरह मलीन चैन पावत अलीन, मन,
  मेरो हरि लीन तातैं सदा हरि लीन हैं॥

(१०)

तब तैं कन्हाई अब देत हौ दिखाई, रीति,
  कहा है सिखाई तोहि देखे ही सुखारे हैं।
नींद सौ उदास, सेनापति देखिबे की आस,
  तजि कै बिलास भये बैरागी बिचारे हैं॥
रूप ललचाते, भली बुरी को न पहिचानैं,
  रावरे बियोग बावरे से करि डारे हैं।
लाल प्रान प्यारे सिख दै दै सब हारे नैन,
  तेरे मतवारे ते न मेरे मतदारे हैं॥

मार—कामदेव। परवीन—दक्ष। छीन—क्षीण। बिलास—सुख भोग। ते न मेरे मतदारे हैं—वे मेरे अधिकार के बाहर हो गये हैं।

(११)

रूप कै रिझावत हौ किन्नर लौं गावत हौ,
सुधा बरसावत हौ लोयन स्रवन कौं।
हिय सियरावत हौ जिय हू तैं भावत हौ,
गिरिधर ज्यावत हौ बर बधू जन कौं॥
रसिक कहावत हौ, यामैं कहा पावत हौ,
चेटक लगावत हौ सेनापति मन कौं।
चितहिं चुरावत हौ कबहुँ न आवत हौ,
लाल तरसावत हौ हमैं दरसन कौं॥

(१२)

छूट्यो ऐबो जैबो, प्रेम पाती कौ पठैबो, छूट्यौ,
छुट्यौ दूरि दूरि हूं तैं देखिबौ दृगेन तैं।
जेते मधियाती सब तिन सौं मिलाप छूट्यौ,
कहिबौ सँदेस हू कौ छूट्यौ सकुचन तैं॥
एती सब बातैं सेनापति लोकलाज काज,
दुरजन त्रास छुटी जतान जतन तैं।
उर अरि रही, चित चुभि रही देखौ एक,
प्रीति की लगनि क्यौं हूं छूटति न मन तैं॥

लोयन—आँखें। स्रवन—कान। मधियाती—मध्यवर्ती।
सकुचन—संकोच।

(१३)

लाल के बियोग तैं, गुलाल हुतैं लाल, सोई,
अरुन बसन ओढ़ि जोग अभिलाख्यौ है।
सैन सुखतज्यौ, सज्यौ रैन दिन जागरन,
भूलि हू न काहू और रूप रस चाख्यो है॥
प्यारी के नयन अँसुआन बरसत, तासौं,
भीजत उरोज देखि भाउ मन भाख्यौ है।
सेनापति मानौ प्रानपति के दरस रस,
शिव कौं जुगल जलसाई करि राख्यौ है॥

(१४)

लोचन बिसाल, लाल अधर प्रबाल हू तैं,
चंद तैं अधिक भेद हास की निकाई है।
मन लै चलति रति करति सहासपन,
बोलति मधुर मानौ सरस सुधाई है॥
सेनापति स्याम तुम नीके रस बस भए,
जानति हौं तुम्हैं उन मोहनी सी लाई है।
काम की रसाल काढ़ै बिरह के उर साल,
ऐसी नव बाल लाल पूरे पुन्य पाई है॥

बसन—कपड़ा। उरोज—छाती। प्रबाल—मूंगा। रसाल—आम। साल—पीड़ा। काढ़ै—बढ़ाती है।

(१५)

जाउ कौ लिलार, ताके पाउ को अधर नैन,
अंजन है आज मनरंजन लसत हौ।
वारी हौं तिहारी छबि ऊपर बिहारी, मेरे,
तारन कौं प्यारे सुधारस बरसत हौ॥
छूजियै न पाइ हौं तौ सेवक हौं सेनापति,
प्रान पति मेरे तुम जीतैं तरसत हौ।
मान बिन सारौ, सरबस वारि डारौं, लाल,
वारौ ए चरन जे चरन परसत हौ॥

(१६)

बिनही जिरह, हथियार बिन ताके अब,
भूलि मति जाहु सेनापति समझाये हौ।
करि डारि छाती घोर घाइन सौं राती-राती,
मोहि धौं बताओ कौन भाँति छूटि आये हौ॥
पौढ़ौ बलि सेज करौं औसद की रेज बेगि,
मैं तुम जियत पुरबिले पुन्य पाये हौ।
कीने कौन हाल! वह बाघिनी है बाल! ताहि,
कोसति हौं लाल जिन फारि फारि खाये हौ॥

लिलार—माथा। जाउकौ—महावर। पाउकौ—पैर का। राती राती—लाल। पुरबिले—पूर्व जन्म के।

(१७)

फूलन सौं बाल की बनाइ गुही बेनीलाल,
भाल दीनी बैंदी मृगमद की असित है।
अंग अंग भूषन बनाई ब्रज-भूषन जू,
बीरी निज कर कै खवाई अति हित है॥
ह्वै कै रस बस जब दीबे कौं महाउर के,
सेनापति स्याम गह्यौ चरन ललित है।
चूमि हाथ नाथ के लगाइ रही आँखिन सौं,
कही प्रान पति यह अति अनुचित है॥

(१८)

लोल हैं कलोल पारावार के अपार तऊ,
जमुना लहरि मेरे हिय कौं हरति हैं।
सेनापति नीकी पटवास हू तैं ब्रज-रज,
पारिजात हू तैं बनलता सरसति हैं॥
अंग सुकुमारी सग सोरह-सहस रानी,
तऊ छिन एक पै न राधा बिसरति हैं।
कंचन अटा पर जराऊ परजंक तऊ,
कुंजन की सेजैं वे करेजे खरकति हैं॥

मृगमद—कस्तूरी। असित—काली। लोल—चंचल। कल्लोल—तरगें। पटवास—पक्का मकान, तबू। खरकति—खटकती हैं।

(१९)

चले उत पति के वियोग उतपति भई,
छाती है तपति ध्यान प्रान के अधार कौं।
सेनापति स्याम जू के विरह बिहाल बाल,
सखी सब करति विचार उपचार कौं॥
प्रीतम अरंग जातैं ताही तैं अरगजा तैं,
सीरक न होति जुर जारत है मार कौं।
सीतल गुलाब हू सौं घिसि उर पर कीनौ,
लेप घनसार कौं सो मानौं घन सार कौं॥

(२०)

कौहू तुव ध्यान करै तेरौ गुनगान कौहू,
आन की कहत आन, ज्ञान बिसरायौ है।
तो सौं उरझाइ मन गिरै मुरझाइ सकै,
कौन सुरझाइ, काहू मरम न पायौ है॥
सुधा तैं सरस ताकौ तेरौ है दरस तेरे,
ताकौं न तरस सेनापति मन आयौ है।
तेरे हँसि हेरे हरि, हिए ऐसे हाल होत,
हाला में हलाइ मानौ हलाहल प्यायौ है॥

उपचार—चिकित्सा। अरग—अलग। अरगजा—कपूर चन्दनादि। सीरक—ठंडा। जुर—ज्वर। घनसार—कपूर। घन—लुहार का हथौड़ा। सार—लोहा। हाला—मदिरा। हलाहल—विष।

(२१)

पून्यौ सी तिहारी लाल, प्यारी मैं निहारी बाल,
तारे सम मोती के सिंगार रही साजि कै।
झीनौ पटु गात, चाँदनी सौं अवदात जात,
लोचन चकोरन कौं देखैं दुख भाजि कै॥
सेनापति तनसुख सारी की किनारी बीच,
नारी के बदन आछी छबि रही छाजि कै।
पूरन सरद चंद-बिम्ब ताके आस पास,
मानहु अखंड रह्यौ मंडल बिराजि कै॥

(२२)

भौन सुधराये सुख साधन धराये चार्यौ,
जाम यों बराये सखी आज रति राति है।
आयौ चढ़ि चंद पै न आयौ वसुदेव-नंद,
छाती न धिराति आधी राति नियराति है॥
सेनापति प्रीतम की प्रीति की प्रतीति मोहि,
पूंछति हौं तोहि मोसी और को सुहाति है।
किन बिरमाये केलि कला कै रमाये लाल,
अजहूं न आये धीर कैसे धरि जाति है॥

अवदात—उज्वल। तनसुख—एक प्रकार का फूलदार कपड़ा। भौन—घर। धिराति—धीर धरना। बिरमाए—फँसा लिया।

(२३)

चंद दुति मंद कीने नलिन मलिन तैं ही,
तो तैं देव अंगनाऊ रंभादिक तर हैं।
तूसी एक तूही अरु तोसे तेरे प्रतिबिम्ब,
सेनापति ऐसे सब कवि कहत हैं॥
समुझैं न वेई, मेरे जान यौं कहत जेई,
प्रतिबिम्ब वेह तेरे भेष निरंतर हैं।
यातैं मैं बिचारी प्यारी परे दरपन बीच,
तेरे प्रतिबिंबौ पै न तेरी पटतर हैं॥

(२४)

लाल मन रंजन के मिलिबे कौं मंजन कै,
चौकी बैठी बार सुलबति नर नारी है।
अंजन, तमोर, मनि, कंचन, सिंगार बिन,
सोहत अकेली देह सोभा कै सिंगारी है॥
सेनापति सहज की तनकी निकाई ताकी,
देखि कै हगन जिय उपमा बिचारी है।
ताल गीत बिन, एक रूप कै हरति मन,
परबीन गाइन की ज्यौं अलापचारी है॥

अंगनाऊ—स्त्रियाँ। गाइन—गवैये। ऊजरी—गोरी। रंचक—थोड़ा सा। वारी—अल्पवयस्का।

(२५)

षोड़स बरस की है, खानि सब रस की है,
जो सुख बरस की है, करता सुधारी है।
ऊजरी कनक मन, गूजरी झनक ऐसी,
गूजरी बनक बनी लाल तन सारी है॥
सौंह मो तिहारी सेनापति है विहारी! मैंतौ,
गति-मति हारी जब रंचक निहारी है।
नंद के कुमार वारी प्यारी सुकुमार वारी,
भेष मारवारी मानौ नारी मार बारी है॥

(२६)

तेरौ मुख देखे चद देखौ न सुहाइ अरु,
चंद के अछत जाकौं मन तरसत है।
ऐसे तेरे मुख सौं कहत सब कवि ऐसे,
देखौ मुख चंद के समान दरसत है॥
वे तौ समुझैं न कछु सेनापति मेरे जान,
चंद तै मुखारविन्द तेरौ सरसत है।
हँसि हँसि, मीठी मीठी, बातैं कहि कहि ऐसे,
तिरछे कटाछ कब चंद बरसत है॥

ऊजरी—साफ़। रंचक—थोड़ा सा। अछत—अछत।

(२७)

हितू समझावें, गुरुजन सकुचावैं बैन,
सिख के सुनावें, पै न चैन लहियत है।
सेनापति स्याम मुसकाई मन बस कीनौ,
तातैं निसिवासर विरह दहियत है ॥
नेह तैं विकल गेह बैठे रहियत नित,
कुल कौ कलंक कहौ कैसे सहियत है।
कौहू जौ अचानक मिलें तौ मिलैं मारग में,
वाकी उत जैवो अब कैसो सहियत है ॥

(२८)

जरद बदन, पान खाये से रदन मानौं,
हरद सरद-चंद दुति दिखावति है ।
चीकने चिकुर छुटि रहे हैं बिसाल भाल,
बाँधी कसि पट्टी सेनापति रिझावति है ॥
कीने नैन देखै मुख-चंद नंदन कौं,
अंक लै मयंकमुखी ताहि मल्हावति है।
बाएँ कर होरिल कौं सीस राखि दाहिने सौं,
गहे कुच प्यारी पय-पान करावति है ॥

हितू—भाई-बन्धु । बैन—वाणी । रदन—दाँत । हरद सरद-चन्द—मानो शरद का चन्द्रमा पीला पड़ गया है। चिकुर—बाल । मल्हावति—पुचकारती है । होरिल—शिशु ।

(२९)

कौनै बिरमाये कित छाये अजहूं न आए,
कैसे सुधि पाऊँ प्यारे मदन गुपाल की।
लोचन जुगल मेरे तादिन सुफल ह्वै हैं,
जादिन बदन छबि देखौं नँदलाल की॥
सेनापति जीवन अधार गिरिधर बिन,
और कौन हरै बलि बिथा मो बिहाल की।
इतनी कहत, आँसू बहत फरकि उठी,
लहर लहर दृग बाँईं ब्रज-बाल की॥

(३०)

तोकी अगना हैं, भावै सब अंग नाहै देखी
निज अगना है ठाढ़ी अंग सिंगारति है।
यह बसुधा रति है ऐसौ जसु धारति है,
कोल कौं सुधारति है देति सुधा रति है॥
पूरि कामना सकत तोरो ताकी आस कत,
सेनापति आसकत नींद बिसारति है।
बोलनै सराँहति है, प्रान बलिहारति है,
तन-मन हारति है तोहि निहारति है॥

अगना—कामिनी। नाहै—पति को। अगना—आँगन।

(३१)

अमल कमल, जहाँ सीतल सलिल, लागी
आस-पास पारिन सबनि ताल जाति है।
तहाँ नव नारी, पंचबान बैस वारी मद्दा,
मत्त प्रेम-रस आस बनि ताल जाति है॥
गावति मधुर, तीनि ग्राम सात सुर मिलि,
रहो ताननि में बसि बनि ताल जाति है।
सेनापति मानौ रति, नीकी निरखति अति,
देखि कै जिनै सुरेस बनिता लजाति है॥

(३२)

कमल तैं कोमल, विमल अति कंचन तैं
सोभत हैं अंग भासमान बरनत के।
ताकी तरुनाई, चतुराई की निकाई कीच,
कान परी वा सभा समान बरनत के॥
सेनापति नदलाल पैंचन ही बस करी,
पाये फल बल्लभा समान बर न तके।
दिन दिन प्रीति नई, देखति अनूप भई,
वाम भाग को प्रभा समान बरन तके॥

अमल—निर्मल। पारिन—मेंड़।

(३३)

चले तैं तिहारे पिय, बाढ़्यो है बियोग जिय
रहियैं उदास छूटि गयौ हैं सहाइ सौं।
लोचन स्रवत जल, पल न परति कल,
आनँद कौ साज सब धर्‌यो है उठाइ सौ॥
सेनापति भूले से सदाही रहियत तौतैं,
ज्ञान, प्रान, तन मन लीनौ है उठाइ सौ।
कछू न सोहाइ, दिन राति न बिहाइ हाइ,
देखे तैं लगत अब ऊजर सौं पाइसौ॥

(३४)

झूंठे काज बनाइ, मिसही सौं घर आइ,
सेनापति स्याम बतियान उचरत हौ।
आइ कै समीप, करि साहस सयान ही सौं,
हँसी हँसी बातन ही बाँह कौं धरत हौ॥
मैं तो सब रावरे की बात मन मैं की पाइ,
जाकौं परपंच एतौ हम सौं करत हौ।
कहाँ एती चतुराई, पढ़ी आप जदुराई,
आँगुरी पकरि पहुँचा कौ पकरत हौ॥

सोहाइ—अच्छा लगना। ऊजर—उजाड़। रावरे—आपके।

(३५)

ज्यों ज्यों सखी सीतल करति उपचार सब,
त्यों त्यों तन बिरह की बिथा सरसाति है।
ध्यान कौं धरत सगुनौतियो करत, तेरे
गुन सुमिरत ही बिहाति दिन राति है॥
सेनापति जदुबीर मिलें ही मिटैगी पीर,
जानत है। प्यास कैसे ओसन बुझाति है।
मिलिबे के समै आप पाती पठवत, कछु
छाती की तपति पति पाती तैं सिराति है॥

(३६)

जौ तैं प्रानप्यारे परदेश कौ पधारे तौ तैं,
बिरह तैं भई ऐसी ता तिय की गति है।
करि कर ऊपर कपोलहिं कमलनैनी,
सेनापति अनमनी बैठियै रहति है॥
कागहि उड़ावै, कौहू कौहू करै सगुनौती,
कौहू बैठि अवधि कै बासर गनति है।
पढ़ि पढ़ि पाती, कौहू फेरि कैं पढ़ति कौहू,
प्रीतम कौ चित्र में सरूप निरखति है॥

सगुनौतियो—सगुन उठाना। बिहाति—बीतती है। तिय—स्त्री। अनमनी—दुचित्ती।

रामायण वर्णन

(३७)

सुरतरु सार की सँवारी है विरंचि पचि,
कंचन खचित चिंतामनि के जराइ की।
रानी कमला कौं पिय-आगम कहन हारी,
सुरसरि सखी सुख देनी प्रभु पाइ की॥
वेद मैं बखानी तीनि लोकन की ठकुरानी,
सब जग जानी सेनापति के सहाइ की।
देव-दुख-दंडन, भरत सिर मंडन वे,
बंदौं अघ खंडन खराऊँ रघुराइ की॥

(३८)

कंज के समान सिद्ध मानस मधुप निधि,
परम निधान सुरसरि-मकरंद के।
सब सुख साज, सुर-राजन के सिरताज,
भाजन हैं मंगल मुकति रूप कंद के॥
सरजू-विहारी रिपिनारी ताप-हारी ज्ञान,
दाता हितकारी सेनापति मति मंद के।
विस्व के भरन, सनकादि के सरन दोऊ,
राजत चरन महाराज रामचंद के॥

सुरतरु—कल्पवृक्ष। पचि—परिश्रम कर के। खचित—चित्रित। अघखंडन—पापनाशक। कंज—कमल। सुरसरि मकरंद—गंगाजल रूपी मधु। भाजन—आगार।

(३९)

सोहैं देह पाइ किधैां चारि हैं उपाइ किधैां,
चतुरंग संपति के अंग निरधार हैं।
किधैां ए पुरुप रूप चारि पुरुपारथ हैं,
किधौं वेद चारि धरे मूरति उदार हैं॥
सब गुन आगर उजागर सरूप धीर,
सेनापति किधौं चारि सागर संसार हैं।
दीपति विसाल, किधैां चारि दिगपाल, किधैां,
चारौ महाराजा दशरथ के कुमार हैं॥

(४०)

त्रिभुवन रच्छन दच्छ पच्छ रच्छिय कच्छप वर।
फन फनिंद संभार, भार दिग्गज तुव दुंभर॥
धरनि धुक्कि जनि परहि, मेरु डग मग जनि डुल्लहि।
सेनापति हिय फुल्लि, क्यों न विरदावलि वुल्लहि॥
इहि विधि विरंचि सुक्कितवदन, कुक्कि धीर चहुँ चक्कदिय।
करपत पिनाक दशरथ्थ सुत, राम हत्थ समरत्थ लिय॥

चारि उपाइ–साम, दाम, दड, भेद। चतुरग सपत्ति–भूमि पद विद्या तथा धन। करपत–खींचना।

(४१)

हहरि गयौ हरि हिये, धधकि धीरत्तन मुक्किय।
भ्रुव नरिंद थरहर्यौ, मेरु धरनी धसि धुक्किय॥
अक्खि पिक्खि नहिं सकइ, सेस नक्खिन लग्गिय तल
सेनापति जय सद्द, सिद्ध उच्चरत बुद्धि बल॥
उद्दंड चंड भुजदंड भरि धनुष राम करषत प्रबल।
टुट्टिय पिनाक निरघात सुनि,लुट्टियदिगतदिग्गजविकल

(४२)

सीता अरु राम जुवा खेलत जनक धाम,
सेनापति देखि नैन नैकहू न मटके।
रूप देखि देखि रानी वारि फेरि पियै पानी,
प्रीति सौं बलाइ लेत कैयौ कर चटके॥
पहुँची के हीरन में दर्पात को झाई तरी,
चद बिंबि मानौं मध्य मुकुर निकट के।
भूलि गयौ खेल दोऊ देखत, परसपर,
दुहुन के दृग प्रतिबिंबन सौं अटके॥

हहरि-काँप गया। धीरत्तन मुक्किय—धीर लोगों का धैर्य छूट गया। धुक्किय-धँस गया। अक्खि-आँख। पिक्खि—देखना। नक्खिन—नष। चद—बलवान। निर्घात-वज्रपात। बिंबि—बिम्ब।

(४३)

आनंद मगन चंद महा मनि मंदिर मैं,
रमै सियराम सुख, सीमा है सिंगार की।
पूरन सरद ससि सोभा सौं परस पाट,
चाढ़ी है सहस गुनी दीपति अगार की॥
भौन के गरभ छवि छीर की छिटकि रही,
विविध रतन जोति अंबर अपार की।
दोऊ बिहसत बिलसत सुख सेनापति,
सुरति वरत छीर सागर विहार की॥

(४४)

पिक्खि हरिन मारीच, थप्पि लक्खन सिय सत्थह।
चल्यौ बीर रघुपत्ति, क्रुद्ध उद्धत धनु हत्थह॥
परत पग्ग भर मग्ग, कित्ति सेनापति वुल्लिय।
जलनिधि जल उच्छलिय, सब्ब पब्बै गन डुल्लिय॥
दब्बिय जु छित्ति पत्ताल कँह, भुजग पत्तिभग्गिय सटकि
रक्खिय जु हट्टि गुट्टिय कठिन, कमठ पिट्टि टुट्टिय चटकि

भौन के गरभ—आँगन। थप्पि-स्थापित करके। पग्ग भर-पैर का भार। बुल्लिय-वर्णन करते हैं। छित्ति—पृथ्वी। भुजग पत्ति—शेषनाग।

(४५)

बिरच्यौ प्रचंड बरिबंड है पवन पूत,
जाके भुजदंड दोऊ गंजन गुमान के।
इत तें पखान चले उत तें प्रबल बान,
नाचै हैं कबंध माचे महा घमसान के॥
सेनापति धीर कोई धीर न धरत सुनि,
घूमत गिरत गजराज हैं दिसान के।
बरजत देव कपि तरजत रावन कौं,
लरजत गिरि गरजत हनूमान के॥

(४६)

काढ़त निषंग तैं, न साधत सरासन मैं,
खैंचत, चलावत, न बान पेखियत है।
स्रवन मैं, हाथ, कुंडलाकृति धनुष बीच,
सुन्दर बदन इकचक लेखियत है॥
सेनापति कोप ओप ऐन हैं अरुन नैन,
संबर दलन मैन तैं बिसेखियत है।
ह्यौं नत ह्वै कै अंग ऊपर कौं संगर मैं,
चित्र कैसो लिख्यौ राजा राम देखियत है॥

कबंध—रुंड। पखान—पत्थर। तरजत—डाँटते हैं। लरजत—काँपते हैं। निषंग—तरकस। संबर दलन—संबर दैत्य का नाश करने वाले।

(४७)

सिव जू की निद्धि, हनुमान हू की सिद्धि, विभी,
पन कौं समृद्धि बालमीकि नैं बखान्यौ है।
बिधि कौं अधार चारौं वेदन कौ सार,
जप जज्ञ कौं सिंगार सनकादि उर आन्यो है॥
सुधा के समान भोग मुकति निधान महा,
मंगल निदान सेनापति पहिचान्यौ है।
कामना कौ कामधेनु. रसना कौ बिसराम,
धरम कौ धाम राम नाम जग जान्यौ है॥

(४८)

महाबलवंत हनुमत बीर अंतक ज्यौं,
जारी है निसंक लंक बिक्रम सरसि कै।
उठी सत जोजन तैं चौगुनी झरफ जरे,
जान सुरलोक पै न सीरे होत ससि कै॥
सेनापति कछू ताहि बरनि कहत मानौ,
ऊपर तैं परे तेज लोक हैं बरसि कै।
आगम बिचारि राम बान कौ अगाऊ किधौं,
सागर तैं पर्‌यौ बड़वानल निकसि कै॥

अंतक—यमराज। निद्धि—खजाना। झरफ—लपट। आगम—भविष्य।

(४९)

पूरवली जासों पहिचान हो न कोहू आइ,
भयो न सहाय जो सहाइ की ललक मैं।
पहिलै ही आयौ वैरी वीर कै मिलायौ, छिन
छ्वायौ सीस लाल पद नख की झलक मैं॥
सेनापति दया दान वीरता बखानै कौन,
जो न भई पीछे आगे होनी न खलक मैं।
परम कृपाल, रामचन्द्र भुवपाल, विभी,
षन दिगपाल कीनौं पाँचई पलक पै॥

(५०)

सेनापति राम अरि सासना के साइक तैं,
प्रगट्यो हुतासन, अकास न समात है।
दीन महा मीन, जीव हीन जलचर चुरैं,
वरुन मलीन कर मीड़ै पछितात है॥
तब तौ न मानी, सिन्धुराज अभिमानो अब,
जालि है न जानी कहा होत उतपात है।
संका तैं सकानी लंका रावन की रजधानी,
पजरत पानी धूरिधानी भयौ जात है॥

पूरवली—पूर्वकालिक। खलक—ससार। अरि सासना-शत्रु दमनकारी। हुतासन—अग्नि। मीड़ै—मीजै। पजरत—जलना। धूरिधानी-धूल कर देना।

(५१)

धर्‍यौ पग पेलि दसमत्थ हू के मत्थ पर,
जोरौ आइ हत्थ समरत्थ बाहु बल मैं।
यह कहि कोपि कै कपीस पाउँ रोपि करि,
सेनापति बीर बिरझानौ बैरि दल मैं॥
फ़स है फनिंद भये पब्बै चक चूर भये,
दिग्गज गरद, दल दारुन दहल मैं।
पाइ बिकराल के धरत ततकाल, गए,
सपत पताल फूटि पापर से पल मैं॥

(५२)

बालि कौ सपूत, कपिकुल पुरहूत रघु,
बीर जू कौ दूत, धारि रूप बिकराल कौं।
जुद्ध-मद गाढ़ौ पांउ रोपि भयौ ठाढ़ौ सेना-
पति बल बाढ़्यौ रामचंद भुवपाल कौं॥
कच्छप कहलि रह्यौ, कुंडली टहलि गये,
दिग्गज दहलि, त्रास पर्‍यौ चक चाल कौं।
पाँउ के धरत, अति भार के परत भयौ,
एकै है परत मिलि सपत पताल कौं॥

बिरझानौ—झल्ला गया। पब्बै—पर्वत। सपत पताल—सातों पाताल। पुरहूत—इन्द्र। कहलि–कराहने लगना। टहलि गये—खसक गये। चकचाल—चक्कर।

(५३)

जिनकी पवन फौक, पंछिन मैं पंछिराज,
गौरव मैं गिरि, मेरु मंदर के नाम के।
पोहैं दिगपाल वपु, अंबर बिसाल धसैं,
भाल मध्य निकर दहन दिन धाम के॥
अनल कौं जल करैं, जल हूं कौं थल करै,
अगम सुगम सेनापति हित काम के।
वज्र हू तें दारुन, दनुज दल दारन, वे
पब्बय विदारन, प्रबल बान राम के॥

(५४)

कुस लव रस करि गाई सुर धुनि कहि,
भाई मन संतन के त्रिभुवन जानी है।
देवन उपाइ कीनौ यहै भौ उतारन कौं,
बिसद बरन जाकी सुधासम बानी है।
भुव पति रूप देह धारी पुन्न सील हरि,
आई सुर पुर तैं धरनि सिय रानी है।
तीरथ सरब सिरोमनि सेनापति जानी,
राम की कहानी गंगा धार की बखानी है॥

फौक–छान के बचा हुआ निस्सार पदार्थ। पोहैं—छेदते हैं। भाल—तीर का फल। अंबर—आकाश। भौ–भवसागर। पुन्न–पुण्य।

राम रसायन

(५५)

दैके जिन जीव ज्ञान, प्रान तन मन मति,
जगत दिखायौ जाकी रचना अपार है।
दृगन सौं देखे विस्वरूप है अनूप जाकौ,
बुद्धिसौं बिचारै, निराकार निरधार है॥
जाकौ अध ऊरध गगन दस दिसि उर,
व्याप रह्यौ तेज, तिनि लोक कौं अधार है।
पूरन पुरुष हृषीकेस गुन धाम राम,
सेनापति ताहि बिनवत बार बार है॥

(५६)

सोचत न कौह्, मन लोचत न बार बार,
मोचत न धीरज, रहत मोद घन है।
आदर के भूखे रूखे रूख सौं अधिक रूखे,
दूखे दुरजन सौं न डारत बचन है॥
कपट बिहीन ऐसो कौन परबीन जासैं,
हूजियै अधीन सेनापति मान धन है।
जगत भरन जन रंजन करन मेरौ,
बारिद बरन राम दारिद हरन है॥

मति—बुद्धि। लोचन—चाहता है। मोचन—छोड़ना। मोद—प्रसन्नता। बारिद बरन—मेघ के रंग का।

(५७)

लच्छि ललना है, सारदाऊ रसना है जाकी,
ईस महामाया हू कौं निगमन गायौ है।
लोचन बिरोचन सुधाकर लसत, जाकौं,
नदन बिधाता, हर नाती जाहि भायौ है॥
चारि दिगपाल हैं बिसाल भुजदंड, जाके,
सेस सुख सेज, तेज तीनि लोक छायौ है।
महिमा अनंत सिव कंत राम भगवंत,
सेनापति संत भागिवंत काहू पायौ है॥

(५८)

छाँड़ि कै कुपैंडे पड़े जो बिभीषनादि,
तेहूँ तुम तारे, चित चीते काम करे हैं।
पैंड़ौ तजि बन मैं कुपैंडे परी रिषिनारी,
तारी ताके दोष मन में न कछू धरे हैं॥
पैंड़ौ तजि हम हू, कुपैंडे परे तारिबे कौं,
तारियै अपार कलमष भार भरे हैं।
सेनापति प्रभु पैंडै परे ही जौ तारत हौ,
तौब हम तारिबे कौं तेरे पैंड़े परे हैं॥

निगमन—वेद। बिरोचन—सूर्य। सुधाकर—चन्द्रमा।
कुपैंडे—कुमार्ग। पैंड़े परे—पीछे पड़े। चित चीते—मनचाहे।
रिषिनारी—अहिल्या। कलमष—पाप।

(५९)

नीकी मति लेहु, रमनी की मति लेहु मति,
सेनापति चेत कछू पाहन अचेत है।
करम, करम करि करमन कर, पाप
करम न कर मूढ़, सीस भयो सेत है॥
आवै बनि जतन ज्यौं रहै बनि जतनन,
पुत्र के बनिज तन मन किन देत है।
आवत विराम, बैस बीति अभिराम, तातैं
करि बिसराम भजि रामै किन लेत है॥

(६०)

कीनौ बालापन बाल केलि मैं मगन मन,
लीनौ तरुनापै तरुनी के रस तीर कौं।
अब तू जरा मैं पर्‌यौ मोह पिंजरा मैं, सेना
पति भजु रामैं जो हरैया दुख पीर कौं॥
चितहिं चिताउ भूल काहू न सताउ, आउ
लोहे कैसो ताउ, न बचाउ है सरीर कौं।
लेहु देहु करि कै, पुनीत करि लेहु देह,
जीभै अवलेह देहु सुरसरि नीर कौं॥

रमनी—स्त्री। मति—राय। करम करम करि करमन कर—क्रम से संसार के सब कर्मों को कर। तरुनापै—युवावस्था में। तरुनी—युवती। अवलेह—चाटने वाली दवा।

(६१)

कोहै उपमान? भासमान हू तैं भासमान,
परम निदान सेनापति के सहाइ कौ
तेज कौ अधार अति तीछन सहस धार,
एक सरदार हथियार समुदाइ कौं।
अमर अवन, दल दानव दवन, मन
पवन गवन पुजवन जन चाइ कौं
कामना कौ बरसन, सदा सुभदरसन,
राजत सुदरसन चक्र हरि राइ कौं॥

(६२)

गंगा तीरथ के तीर, थके से रहौ जू गिरि,
कै रहौ जू गिरि चित्रकूट कुटी छाइ कैं।
जातैं दारा नसी, वास तातैं वारानसी किधौ,
लुंज ह्वै कै वृन्दावन कुंज बैठ जाइ कै॥
भयौ सेतु अध! तू हिये कौ हेतु बँधजाइ,
धाइ सेतु बध के धनी सौं चित लाइ कै।
बसौ कदरा मैं भजौ खाइ कंद रामै, सेना
पति मद रामै मति सोचै अकुलाइ कै॥

उपमान—समता करने वाला। भासमान—सूर्य। अमर अवन—देवताओं का रक्षक। दल दानव दवन—दानवों के दल का नाशक। मन पवन गवन—मन और पवन की गति वाला। दारा स्त्री। गिरि—पहाड। भयौ सेतु अध—बाल सफेद हो गये और दृष्टि जाती रही। कदरा—गुफा।

त्रितीय सोपान

श्लेप वर्णन

(१)

परम ज्योति जाकी अनंत, रमि रही निरंतर।
आदि मध्य अरु अंत, गगन दस दिसि बहिरंतर॥
गुन पुरान इतिहास, वेद बंदीजन गावत।
धरत ध्यान अनवरत, पारब्रह्मादि न पावत॥
सेनापति आनदघन, रिद्धि सिद्धि मगल करन।
नाइक अनेक ब्रह्मण्ड कौ, एक राम सतत सरन॥

(२)

पाई जो कविन जल-थल जप-तप करि,
विद्या उर धरि, परिहरि रस रोसौ है।
ताही कविताई कौं सुजस पसु चाहत है,
सेनापति जानत जो अच्छर नओसौ है॥
पाइ कै परस जाकौ सिलाहू सचेत भई,
पायौ बोध-सार सारदाहू कौ धरोसौ है।
और न भरोसौ, जिय परत खरोसौ, ताही
राम पदपंकज कौ पूरन भरोसौ है॥

निरंतर—सदा। बहिरंतर—बाहर भीतर। सतत—सदा। रस रोसौ—राग द्वेप। नओसो—नवीन अक्षर ज्ञान। परस—स्पर्श। बोधसार—तत्व ज्ञान।

(३)

भूप-सभा-भूपन छिपावौ परदूपन कु-
बोल एक हू स्त्रन कहे न देह पाइ कै।
राज महा जानि, पूरे सकल कलानि सेना—
पति गुनखानि और हू कौं गुनदाइ कै॥
तुम ही बताई, कछु कीनी कविताई, ता मैं
होइ जोगताई, दुचिताई के सुभाइ कै।
बुद्धि के विनाइकै, गुसाँईं! कविनाइकै, सु-
लीजियौ बनाइकै कहत सिर नाइ कै॥

(४)

दीछित परसराम, दादौ है विदित नाम,
जिन कीन्हें जज्ञ, जाकी जग मैं बड़ाई है।
गंगाधर-पिता गंगाधर के समान जाकौं,
गंगातीर बसत अनूप जिन पाई है॥
महा जानिमनि, विद्या दान हू कौ चिन्तामनि
हीरामनि दीछित तैं पाई पंडिताई है।
सेनापति सोई, सीतापति के प्रसाद जाकी,
सब कवि कान दै सुनत कविताई है॥

स्त्रन—श्रवण। जोगताई—योग्यता। विनाइकै—गणेशजी को।

(५)

मूढ़न कौ अगम सुगम एक ताकौं जाकी,
तीछन अमल विधि बुद्धि है अथाह की।
कोई है अभग कोई पद है सभंग सोधि,
देखें सब अंग, सम सुधा के प्रवाह की॥
ज्ञान के निधान, छद कोप सावधान जाकी,
रसिक सुजान सब करत हैं गाहकी।
सेवक सियापति कौं सेनापति कवि सोई,
जाको द्वै अरथ कविताई निरवाह की॥

(६)

दोष सौं मलीन, गुनहीन कविता है तौ पै,
कीने अरबीन परबीन कोई सुनि है।
बिन ही सिखाये, सब सीखि हैं सुमति जौ पै,
सरस अनूप रस रूप यामैं धुनि है॥
दूषन कौं करिकै, कवित्त बिन भूषन कौं,
जो करै प्रसिद्ध ऐसो कौन सुरमुनि है।
रामै अरचत सेनापति चरचत दोऊ,
कवित रचत यातैं पद चुनि चुनि है॥

तीछन—तेज। गाहकी—चाहना। मलीन—मैली। अरचत—पूजा करता है।

(७)

राखति न दोपै पोपै पिंगल के लच्छन कौं,
बुध कवि के जो उपकंठ ही बसति है।
जोए पद मन कौं हरपि उपजावति है,
तजै को कनरसै जो छंद सरसति है॥
अच्छर हैं विपद करति उपै आप सम,
जातैं जगत की जड़ताऊ बिनसति है।
मानो छबि ताकी उदवत सविता की सेना,
पति कवि ताकी कविताई बिलसति है॥

(८)

तुकन सहित भले फल कौं धरत सूधे,
दूरि कौं चलत जे हैं धीर जिय ज्यारी के।
लागत विविध पच्छ सोहत हैं गुन संग,
स्रवन मिलत मूल कीरति उज्यारी के॥
सोई सीस धुनै जाके उर मैं चुभत नीके,
बेग बिधि जात मन मोहैं नरनारी के।
सेनापति कवि के कवित्त बिलसति अति,
मेरे जान बान हैं अचूक चापधारी के॥

उपकंठ—कंठ के पास। कनरसै—कान के रस को अर्थात् कानों को अच्छी लगने वाली बातें।

(९)

बानी सों सहित सुबरन मुँह रहैं जहाँ,
धरति बहुत भाँति अरथ समाज कौं।
सख्या करि लीजै अलंकार हैं अधिक यामैं,
राखौ मति ऊपर सरस ऐसे साज कौं॥
सुनु महाजन चोरी होति चारि चरन की,
तातैं सेनापति कहै तजि करि ब्याज कौ।
लीजियौ बचाइ ज्यौं चुरावै नहिं कोई सौंपी,
वित्त की सी थाती मैं कवित्तन की राज कौ॥

(१०)

व्यापी देस देस विस्व कीरति उज्यारी जाकी,
सीतै सग लीने जामैं केवल सुधाई है।
सुर नर-मुनि जाके दरस कौं तरसत,
राखत न खर तेजै कला की निकाई है।
करन के जोर जीति लेत हैं निसा कलकै,
सेवक हैं तारे वाकी गनती न पाई है।
राजा रामचंद अरु पूनो के उदित चद,
सेनापति बरनी दुहूं की समताई है॥

अरथ—सपत्ति। अलकार—आभूषण। चरन—छद का चतुर्थांश। थाती—धरोहर। खर—तीक्ष्ण, एक राक्षस का नाम।

(११)

लाह सौं लसति नग सोहत सिंगार हार,
छाया सो न जरद जुही की अति प्यारी है।
जाकी रमनीय रौस बाल हैं रसाल बनी,
रूप माधुरी अनूप रंभाऊ निवारी है॥
जाति है सरस सेनापति बनमाली जाहि,
सींचै घन रस फूल भरी मैं निहारी है।
सोभा सब जोबन की निधि है मृदुलता की,
राजै नव नारी मानों मदन की बारी है॥

(१२)

जाकी सुभ सूरति सुधारो है सुहाग भाग,
पूरी तौ लगै रसाल नाहैं जब दरसी।
जर बलै चलै रतो आगरी अनूप बानी,
तोरा है अधिक जहाँ बान नहिं करसी॥
सेनापति सदा जामैं रूपौ है अधिक गुनौ,
जाहि देखि नोधन की छतियाँ है तरसी।
धनी के पधारै बाट काँटे हू में पाँव धरि,
यह बर नारि सुवरन की मुहर सी॥

लाह—लाख, कान्ति। नग—पेड़, दल। रौस—क्यारियों के बीच का मार्ग। रभा—केला। सुहाग—सौभाग्य।

(१३)

कौल की है पूरी जाकी दिन दिन बाढ़ै छबि,
रंचक सरस नथ झलकति लोल है।
रहै परि यारी करि सगर में दामिनी सी,
धीरज निदान जाहि बिछुरत को लहै॥
यह नथ नारि साँची काम की सी तरवारि,
अचरज एक मन आवत अतोल है।
सेनापति बाँहैं जब धारै तब वार बार,
ज्यौं ज्यौं मुरि जात त्यौं त्यौं कहत अमोल है॥

(१४)

जाकौं फेरि फेरि नारि सेनापति सब चाहैं,
बनी नव तरुन के अंतर बसति है।
सब जीकौं नातौ ताहि डारै करि हातौ पाइ,
हाथ करै लाल जो सनेह सरसति है॥
अंग संग काज टूक टूक ह्वै रहति सनी,
सहज के रस रंग राचति रसति है।
लता की निकाई जामैं नीकी बनि आई मिहीं,
मिहदी की समता कौं प्यारी परसति है॥

कौल—वादा। रंचक—छोटी। अतोल—अनुपम। नारि—स्त्री या गर्दन। हातौ—पृथक। मिहीं—महीन।

(१५)

पैयै भली घरी लन सुख सब गुन भरी,
नूतन अनूप मिहीं रूप की निकाई है।
आछी चुनि आई कैधौ पेंचन सौं पाई प्यारी,
ज्यौं ज्यौं मन भाई त्यौं त्यौं मूड़हिं चढ़ाई है॥
पूरी गज गति बरदार है सरस अति,
उपमा सुमति सेनापति बनि आई है।
प्रीति सौं बाँधे बनाइ, राखै छवि थिरकाइ,
काम कीसी पाग बिधि कामिनी बनाई है॥

(१६)

लीने सुघराई संग सोहत ललित अंग,
सुरत के काम के सुघर ही बसति है।
गौरी नव रस राम करी है सरस सोहै,
सुहै के परस कलियान सरसति है॥
सेनापति जाके बाँके रूप उरझत मन,
बीना मैं मधुर नाद सुधा बरसति है।
गूजरी झनक माझ सुभग तनक हम,
देखी एक बाला राग माला सी लसति है॥

घरी—तह। बरदार—अच्छी स्त्री या बटी हुई। सुघराई—दक्षता। ललित—सुन्दर, राग विशेष। गौरी—गौर वर्णीया स्त्री तथा रागिनी विशेष। सूहा—लाल रंग या राग विशेष। गूजरी—एक प्रकार का आभूषण।

(१७)

सोहति बहुत भाँति चीर सों लपेटी सदा,
जाकी मध्य दसा सो तौ मैन कौ निधान है।
तम कौं न राखै सेनापति अति रोसन है,
जा बिना न सूझै होत ब्याकुल जहान है॥
परत पतंग मन मोहै तिन तरुन के,
जोति है रदन होति सुरति निदान है।
पूरी निधि नेह को उज्यारी दिपि देह की सु,
प्यारी तू तौ गेह की निदान समादान है॥

(१८)

चाहत सकल जाहि रति कै भ्रमर है जो,
पुजवति हौस उरबसी की बिसाल है।
भली बिधि कीनी रस भरी नव जोबनी है,
सेनापति प्यारे बनमाली की रसाल है॥
धरति सुबास पूरे गुन कौ निवास अब,
फूली सब अंग ऐसी कौन कलि काल है।
ज्यौं न कुम्हिलाइ कंठ लाइ उर लाइ लीजै,
लाई नव बाल लाल मानौ फूल माल है॥

चीर—वस्त्र। दसा—अवस्था। निधान—आश्रय। रोसन—प्रदीप्त या प्रसिद्ध। पतग—सूर्य या एक प्रकार का कीड़ा, पतिंगा। समादान—शमादान। हौस—हौंसला।

(६९)

केस रहैं भारे मित्र कर सौं सुधारे तेरे,
तोही माझ पैयत मधुर अति रस है।
तपति बुझाइबे कौ हिय सियराइबे कौं,
रंभा तैं सरस तेरे तन कौ परस है॥
आज धाम धाम पुरइन है कहायौ नाम,
जाके बिहसत मैलौ चंद कौ दरस है।
सेनापति प्यारी तेंही भुवन की सोभा धारी,
तू है पदमिनी तेरा मुख तामरस है॥

(७०)

जहाँ सुर सभा है सुवास बसुधा कौ सार,
जा मैं लहियत ऐरापति हू की गति है।
पेखे उरबसी ऐसी और है सुकेसी देखी,
दुति मैनकाहू की जो हियरै हरति है॥
सेनापति सची जाकी सोभा ना कही बनति,
कलप लता बिना न कैसे हू रहति है।
जागरन कारी जाके होत हैं बिहारी मैं नि-
हारी अमरावती सी भावती लसति है॥

भारे—भारी। मित्र—सूर्य या दोस्त। तामरस—कमल।
ऐरापति—ऐरावत हाथी।

(२१)

पासे की निकाई सेनापति ना कही धनति,
सोरहै नरद करि रदन सुधारी है।
सोभा की बिसाति चीरै धरति बहुत भाँति,
चतुर है मुख गनि गनि डग धारी है॥
मार तें बचाइ कोउ पाउ बिधि कीनो जग,
जाके बस परैं संत कहत जुवारी है।
जीति की है निधि धन हार कौं धरति मीठी,
नारि निहचै कै मानौ चौपर सँवारी है॥

(२२)

प्रीतम तिहारे अनगन हैं अमोल धन,
मेरौ तन जात रूप तातैं निदरत है।
सेनापति पाइ परैं बिनती करै हू तुम्हें,
देति न अधर ती जै तहाँ कौं ढरत है॥
बाट मैं मिलाइ तारे तौल्यौ बहु बिधि प्यारे,
दीनौ है सजीउ आप तापर अरत है।
पीछे डारि अधमन हम दीनौ दूनौ मन,
तुम्हें तुम नाथ इत पाउ न धरत है॥

पासा—चौपड़ में खेला जाने वाला पाँसा या फदा। नरद–नाद। बिसाति–आधार। तारे—नक्षत्र या आँखों की पुतली।

(२३)

बिरह हुतासन बरत उर ताके रहैं,
चाल मही पर परी भूल न गहति है।
सेवती कुसुम हू तैं कोमल सकल अंग,
सून सेज रत काम केलि कों करति है॥
प्रानपति हेत गेह अंग न सुधारै जाके,
धरी है बरस तन मैं न सरसति है।
देखौ चतुराई सेनापति कबिताई की जु,
भोगनी की सरि कौं बियोगनी लहति है॥

(२४)

मोती मनि मानिक रतन करि पूरी घन,
खरे भार भरी अनुकूल मन भाइ है।
जा घर बनिज्ज रहै ताही कौं सरस भाग,
ह्वै है सुखी सेनापति जय लछि पाइ है॥
तुम पतियार ताके तुम ही करन धारी
नीहो घनि बल्ली नीकी लागि ठहराइ है।
मध्य रस सिन्धु मानौ सिंहल तैं आई वह,
तेरी आस नाउ गुन गहो तीर आइ है॥

हुतासन—अग्नि। भोगिनी—साँपिन। सरि—समता। लछि पाइहै—देश पावेगा या धन पावेगा। पतियार—विश्वास या पतवार। आसना—प्रेमिका।

(२५)

देखत नई है गिरि छतियाँ रहे हैं कुच,
निरखी निहारि श्राछे मुख मैं रदन हैं।
बरसनि सोरहै नवासी एक श्रगरी है,
मंद ही चलत भरी जोवन मदन है॥
केस मानैा तूल चौंर झलकत वाके बीच,
पट के कपोल सोभा धरन बदन है।
देखियत सेनापति हरे लाल चीर वारी,
नारी बुढ़िया निदान बसति सदन है॥

(२६)

मोती हैं दसन मनि मूंगा हैं श्रधर वर,
नैन इंद्रनील नख लाल बिलसत हैं।
मरकत ढंपन सैां कंचन कलस कुच,
चरन पदमराग सोभा सरसत हैं॥
प्यारी कोठरी है धन जोवन जवाहिर की,
तहाँ सेनापति चित जइ कै धसत हैं।
तासैां लगे तारे फेर तारी न लगति क्यौं हूं,
जाइ बिघे मन तेव कैसे निकसत हैं॥

तूल—तुल्य, कपास। इन्द्रनील—नीलम। पदमराग—एक प्रकार की मणि या लाल कमल।

(२७)

औरै भयौ रुख तातैं कैसें सखी ज्यारी होति,
विफल भए हैं चंद कछु न बसाति है।
गोसे न मिलत कैसें तीर को सँजोग होत,
पहिली नवनि लही जाति कौन भाँति है॥
सेनापति लाल स्याम रंग चित चुभि रह्यौ,
कैसें कै कठिन रितु पाउस बिहाति है।
आवनि है लाज कर गहैं पंच लोगनि तैं,
कान्ह फिरि गये ज्यों कमान फिरि जाति है॥

(२८)

अरुन अधर सोहैं सकल बदन चंद,
मंगल दरस बुध बुद्धि कै बिसाल हैं।
सेनापति जासौं जुव जन सब जीवक हैं,
कवि अति मंद गति चलति रसाल है॥
तम हैं चिकुर केतु काम की विजय निधि,
जगत जगमगत जाके जोति जाल हैं।
अंबर लसति भुवगति सुखरासिन कौं,
मेरे जान बाल नवग्रहन की माल है॥

गोसे—एकान्त। तीर—समीप, वाण। अरुन—लाल। नवग्रह—सूर्य, चन्द्र, मंगल, बुध, गुरु, शुक्र, शनि, राहु और केतु ये नवग्रह हैं।

(२९)

वदन सरोरुह के संग ही जनम जाकौ,
अंजन सुरंग समता न परसत है।
महारूखौ मुनि हू कौं हियौ चिकनाइ जात,
सेनापति जाहि जब नेक दरसत है॥
रूपहिं बढ़ावै सब रसिकन भावै मीठौ,
नेह उपजावै पै न आप बिनसत है।
आली बनमाली मन फूल मैं बसायौ तेरे,
तिल है कपोल सो अमोल बिलसत है॥

(३०)

करन छुवत वीच ह्वै के जात कुंडल के,
रंग मैं करैं कलोल काम के सुभट से।
चंचल समेत भुव अंबर मै खेलत हैं,
देखत ही बाँधैं डीठि रहैं चटपट से॥
उन्नत सगुन सुद्ध बंस देखि लागैं धाइ,
केलि कला करैं चितै मोहत निपट से।
सेनापति प्रभु बरुनी के बस कीने प्यारी,
नाचत ललन आगे नैना तेरे नट से॥

सरोरुह—कमल। अमोल—अमूल्य। डीठि—दृष्टि। वीच—तरंग। चटपट—चपल। ललन—प्रियनायक।

(३१)

औसरैं हमारे और वालै हिलि मिलि रमै,
ईठ महा ढीठ ऐसे कैसे कै निबहियै
सेनापति बहुत अवधि विते आयौ स्याम,
समय है उराहने कौ कछू कह्यौ चहियै।
आदर दै राखे होति प्रगट अधीरताई,
होति हित हानि जो निदान जान कहियै।
याही तैं चतुर चतुराई सौं कहति मेरे,
भूलि कै भवन भरतार जनि रहियै॥

(३२)

केसौ अति बड़े जहाँ अरजुन पति काज,
अति गति भली विधि बाजी की सुधारी है।
मनी सौं करन बीर संग दुरजोधन के,
संतनु तनै निहारि सुरत्यौ बिसारी है॥
सोहत सदा नकुल कोहै सील सेनापति,
देखियै सु भीमसैन अंग दुति भारी है॥
जाके कहैं आदि सभा परवस परति सो,
भारत की अनी किधौं बनी वर नारी है॥

औसरैं—अवसर पर। बाजी—घोड़ा। केसौ—श्रीकृष्ण या केश। तनै—पुत्र को। संतनु तनै—भीष्म। सुरत्यौ—बुद्धि या विवेक।

(३३)

राख्यौ धरि लाल रंग रंगित ही अंबर मैं,
परी अवगुन गाँठि जातैं ठहरात है।
जोबन की रती सौं मिलाइ धर्यौ भली भाँति,
काम की अगिनि हू सौं जरि न बुझात है॥
पति है अरगजा की महिमा तैं सेनापति,
यातैं अति रति सुख नासि कै सुहात है।
सुख कौ निधान मिलै त्रिविध जगतप्रान,
मान उड़ि जात ज्यौं कपूर उड़ि जात है॥

(३४)

रहै अपसर ही की सोभा जो अनूप धरि,
सुभग निकाई लोने चतुर सु नारी है।
सेनापति ताके मन बालमैं रहैं जु एक,
मूरति जगत मैं न रतन सुधारी है॥
देखैं प्रीति बाढ़ी और बाल छबि डाढ़ी सदा,
सुभ गहने धरै सुअंग दुति भारी है।
लौंग सी लुगाई करि बानी छुल गाई ताही,
भाँति द्वै लगाई जिन भेद सौं विचारी है॥

पति—प्रतिष्ठा या स्वामी। नासिकै—नष्ट करके या नाक को। अपसर—अप्सरा, याप्पकाए। लुगाई—स्त्री। लौंग—नाक में पहनने की कील।

(३५)

सदा नंदी जाकौं आसा कर है विराज मान,
नीकौ घनसार हू तैं बरन है तन कौं।
सैन सुख राखै सुधा दुति जाके सेखर है,
जाके गौरी की रति जो मथन मदन कौं॥
जो है सब भूतन कौ अंतर निवासी रमैं,
धरै उर भोगी भेप धरत नगन कौं।
जानि बिन कहै जानि सेनापति कहै मानि,
बहुधा उमाधव कौं भेद छाँड़ि मन कौं॥

(३६)

जात है न खेयौ क्यौं हू बल्ली न लगति नीकी,
सोचत अधिक मन मूढ़ सब लोग कौं।
नदीन कौ नाथ यातैं पैरत न बनै काहू,
सेनापति राम बीर करता असोग कौं॥
दीरघ उसास लेत अहि रहै भारी जहाँ,
तिमिर है बिकट बतायौ पंथ जोग कौं।
कान्ह के अछत कुंज कामकेलि आगर ही,
तेई बिन कान्ह भई सागर बियोग कौं॥

गौरी—पार्वती, उज्वल। रमैं—रमता है या लक्ष्मी को। नगन—नग्न, पर्वत। उमाधव—उमा के पति महादेवजी। बल्ली—लता, डाँड़। तिमि—अंधकार। जोग—योग, उपाय। आगर—दक्ष।

(३७)

नाहीं नाहीं करैं थोरो मागैं सब दैन कहैं,
मंगन कौं देखि पट देत बार बार हैं।
जिनकौं मिलत भली प्रापति की घटी होति,
सदा सब जन मन भाए निरधार हैं॥
भोगी ह्वै रहत बिलसत अवनी के मध्य,
कन कन जोरैं दान पाठ परिवार हैं।
सेनापति बचन की रचना बिचारौ जामैं,
दाता अरु सूम दोऊ कीने इकसार हैं॥

(३८)

थोरौ कछू मागे होत राखत न प्रान लगि,
रूखे मन मौन ह्वै रहत रिस भरि हैं।
आपने बसन देत जोरिबे की रति लेत,
बितरत जात धन धरा ही मैं धरि हैं॥
जाँचत ही जाचक सौं प्रगट कहत तुम,
चिंता मति करौ हम सो असान करि हैं।
बानी द्वै अरथ सेनापति की विचार देखौ,
दाता अरु सूम दोऊ कीने सरवरि हैं॥

पट—दरवाजा, वस्त्र। प्रापति—आय। घटी—घड़ी, कमी। भोगी—भोग करने वाला, सर्प। रिस—क्रोध। बितरत—बाँटना। धरा—पृथ्वी।

(३९)

सब अंग थोरे थोरे बहुधा रतन जोरैं,
राखैं मुख ऊपर हूं जे न इतबार हैं।
नान्हें घोल घोलैं सभै देखत न पट खोलैं,
राज धन राखिवे कौं पाये अवतार हैं॥
जनम तैं कौहू जे न भरम तें मागे जात,
सत्तहीन आगे सदा राखत न कार हैं।
कामहिं न आवैं सेनापति कौं न भावैं दोऊ,
खोजा अरु सूम सम कीने करतार हैं॥

(४०)

खेत के रहैया अति अमल अरुन नैन,
ओर के असील गुन ही के जे निकेत हैं।
जगत विदित कलि काल के करन हारे,
नाहिने समर कहूं, विजय समेत हैं॥
सेनापति सुमति बिचारि ऐसे साहिबन,
भजौ परवीन जातैं आस बस चेत हैं।
द्विजन कौं रीझि मनि कंचन गनिकै देत,
रीझि देत हाथी कौं सहज बाजी देत हैं॥

पट—घूँघट, वस्त्र, दरवाजा। खोजा—हिजड़े। अमल—नशा। असील—दुर्विनीत। बाजी—बजंतरी, घोड़ा। ओर—आरम्भ। निकेत—खजाना।

(४१)

अमल अखंड चाउ रहै आठ जामै ऐसी,
तेरी पूरी रती सौं छमासौ सुधरायौ है।
नरजा मैं मिलै पलरा मैं देखि दूनौ सोई,
सेनापति समुझि बिचारि कै बतायौ है॥
काहू मैं है घटि अरु काहू मैं अधिक झूठौ;
तामैं पूरौ चौकस समान मैं थतायौ है।
तोलियत जासौं जगत कौ सुबरन रूपौ,
सो बारह मासी तोरा तोहि बनि आयौ है॥

(४२)

जनम कमीन भौन बीर जुद्ध भीत रहैं,
मेघन मैं सदा मन राखत सहेत हैं।
लंगर के दाता अरु भूखन कनक देत,
एक साधु मनै बीस बिस्वा राखि लेत हैं॥
सेनापति सुमति समुझि करि सेवौ इन्हैं,
एतौ जग जानै अवगुन के निकेत हैं।
दादनी की बेर जब देनी होत सौ की ठौर,
बड़े हैं निदान तब दोसै एक देत हैं॥

रती—रत्ती, प्रीति। छमासौ— छः मासे, पृथ्वी के समान क्षमाशील। नरजा—तराजू की डंडी। पलरा—तराजू का पल्ला। बारहमासी—सदा बहार या बारहमासे वाला। तोरा—आभूषण विशेष। कमीन—नीच। सहेत—प्रेमियों के मिलने का स्थान।

(४३)

गीतहि सुनावै तिलकन झलकावैं भुज,
मूलन छुपावैं द्वारका ह्र के पयान ही
वैसनव भेस भगतन की कमाई खाहिं,
सेवैं हरि साहिबै न साँच है निदान ही।
देखि कै लिबास नीची सवनि की नारि होति,
मोहि कै विकच करैं मन धन ध्यान ही।
सेनापति सुमति विचारि देखौ भली भाँति,
कलि के गुसाँईं मानौ माँगना समान ही॥

(४४)

मालै हठि लै कै भले जन ए विसारैं राज,
भोग ही सौं काज रीति करैं न वरत की।
लेहिं कर मुद्रा देह बुरी यों बनावैं छाँड़ि,
निगम को संक अब लाज न रमत की॥
पाइ पकरावैं जो निदान करैं उपदेस,
रा र उतसव ही सौं केलि जनमत की।
सेनापति निरखि विचारि कै बताये देखौ,
कलि के गुसाईं मानौ माँगना जगत की॥

पयान—यात्रा। लिबास—भेप। विकच—मुड़ा हुआ, विकसित। वरत—व्रतादि। मालै—माला या माल। मुद्रा—छाप या रुपया।

(४५)

पावन अधिक सब तीरथ तैं जाकी धार,
जहाँ मरि पापी होत सुरपुर पति है।
देखत ही जाकौं भलौ घाट पहिचानियत,
एक रूप बानी जाके पानी की रहति है॥
घड़ी रज राखैं जाकौं महा धीर तरसत,
सेनापति ठौर ठौर नीकियै बहनि है।
पाप पतवारि के कतल करिबे कौं गंगा,
पुन्य की असील तरवारि सी लसति है॥

(४६)

तेरे भूखन हैं याते ह्वै है न सुधार कछू (?)
बाढ़ैगौ त्रिविध ताप दुख ही सौं दहि है।
सेइ तू गुरू चरन जीति काम हू कौं बल,
वेद हू कौं पूछि तो सौं यहै तत्त कहि है॥
कुपथ कौ छाड़ौ गहौ सुपथ कौं सेनापति,
सिछा लेहु मानि जानि सदा सुख लहिहै।
अच्युत अनंत कहि प्रात सात पुरीन कौं,
धरम करम लेह अमर ह्वै रहि है॥

पावन—पवित्र। घाट—जलाशय के तट पर स्नानादि का स्थान, तलवार की धार। बानी—आदत। पतवारि—नाव का पतवार। गुरुचरन—गुरु के चरण, (गुरुच रन) बनैली गुर्च।

(४७)

तीर तैं अधिक वारि धार निर्धार महा,
दासन मकर चैन होत है न दीन कौं।
होति है करक अति बड़ी न सिराति राति,
तिल तिल बाढ़ै पीर पूरी बिरहीन कौं॥
सीरक अधिक चारि ओर अवनी रहै,
पांउरीन बिना क्यौं हू बनत धनीन कौं।
सेनापति बरनी है बरषा सिसिर रितु,
मूढ़न कौं अगम सुगम परबीन कौं॥

(४८)

नारी नेह भरी कर हियै है तपति खरी,
जाकौं आध घरी बीतै बरस हजार से।
उठत भभूके उर डारत गुलाल हू के,
नवल वधू के अंग तचत अँगार से॥
सीरी जानि छाती धरी बाल के कमल माल,
सेनापति जाके दल सीतल तुपार से।
लागत न बार बिन हरि के बिहार ताही,
हार के सरोज सूखि होत हैं सुहार से॥

सुथरी—स्वच्छ। मकर—मछली, माघ का महीना। करक—कड़कड़ाहट, रुक रुक कर होने वाली पीड़ा। पांउरी—खड़ाऊँ, दालान।

(४९)

द्विजन की जामै मरजाद छूटि जात भेष,
पहिले बरन कौं न तन कौ निदान है।
अंध छवि लीन स्रुति धुनि सुनियै न मुख,
लागी अब लार है न नाक हू कौ ज्ञान है॥
देखियै जबन सोभा घनी जुगलीन माँझ,
नाम हू सौं नातौ कृष्ण केसौ कौं जहाँ न है।
सेनापति जामैं जग आसा ही सौं भटकत,
याही तैं बुढ़ापौ कलि काल के समान है॥

(५०)

कुस लव रस करि गाई सुरधुनि कहि,
भाई मन संतन के त्रिभुवन जानी है।
देवन उपाइ कीनौ यहै भौ उतारन कौं,
बिसद बरन जाकी सुधा सम बानी है॥
भुवपति रूप देह धारी पुत्र सील हरि,
आई सुरपुर तें धरनि सिय रानी है।
तीरथ सरब सिरोमनि सेनापति जानी,
राम की कहानी गंगाधार सी बखानी है॥

नेह—स्नेह, घी । भभूका—लपट । सीरी—शीतल । तुषार—पाला । हरि—श्रीकृष्ण, अग्नि । सुहार एक तरह का नमकीन पकवान । झर—झड़ी, ताप । भा दव—दावाग्नि की लपट, भादों महीना । तरनि—सूर्य ।

(५१)

सूरबली बीर जसुमति कौ उज्यारौ लाल,
चित्त कौं करत चैन बैनहि सुनाइ कै।
सेनापति सदा सुर मनी कों बसी करन,
पूरन करयौ है काम सब कौं सहाइ कै॥
नगन सघन धरै गाइन कौं सुख करै,
ऐसौ तैं अचल छत्र धरयौ है उचाइ कै।
नोके निज ब्रज गिरिधर जिमि महाराज,
राख्यौ है मुसलमान धार तैं बचाइ कै॥

(५२)

बानरन राखै तोरि डारत है अरि लंकै,
जाके बीर लछुन बिराजत निदान है।
अंगद कौं राखै बाहु दुरि करै दूपन कौं,
हरि सभा राजै राज तेज कौ निधान है॥
आनंद मगन दृग देखि जाहि सिय रानी,
सेनापति जाके हेम नगर कौ दान है।
महाबली बीर बसुदेव कौ कुंवर कान्ह,
सो तौ मेरे जान राजा राम के समान है॥

द्विजन—ब्राह्मणों या दाँतों। स्रुति—कान, वेद। जवन—यवन, जव न। आसा—तृष्णा, दशा। उज्यारौ—कान्तिमान। बैन—वचन, बंसी। गाइन कौं—गौओं को या गवैयों को।

(५३)

दिन दिन उदै जाकौं जातें हैं मुदित मन,
देखियै निसान जाके आये अति चाइ कै।
सूर कै बखाने जाहि सब कौं कहै सनेही,
बैरी महा तम जातैं जात है बिलाइ कै॥
सूरति सरस सब बार है लसति जाकी,
सेनापति जो है पदमिनि सुखदाइकै।
पूत दसरथ कौ सपूत रघुबीर धीर,
देख्यौ राजा राम बली मानौ दिन-नाइ कै॥

(५४)

तब की तिहारी हँसि हिलनि मिलनि वह,
देखि जिय जानी हरि बस करि पाए हौ।
सेनापति अधिक अयानी मैं न जानी तुम,
जेंवत ही वाके अँचवत ही पराए हौ॥
बीते औधि आरत त्रियान कौं बिसारत हौ,
धारत न पाउँ बेग कहौ कित छाए हौ॥
पहिले तौ मन मोहौ पीछे कर तन मोहौ,
प्यारे तुम साँचे मन मोहन कहाए हौ॥

बनरन राखै—बदरों को रखता है, रण में अपना हठ रखता है। अंगद—बालि का पुत्र, बाजूबंद। हरि—श्रीकृष्ण, बंदर। उदै—उदय, बढ़ती। सूर—वीर, सूर्य या अंधा। महातम—गाढ़ अंधकार या माहात्म्य। पदमिनी—कमलिनी, लक्ष्मी।

(५५)

जीतत कपोल कौं तिलोत्तमै अनूप रूप,
बात बात ही मैं मंजु घोपै बरसति है।
देखी उरबसी मैनका हू मैं सरस दुति,
जंघ जुग सोभा रंभा हू कौं निदरति है॥
सची विधि ऐसी और कहाँ घैं सु कैसी नारि,
सदा हरि भावते की रति कौं करति है।
जाके है अधर सुधा सेनापति बसुधा मैं,
प्यारी सुरपुर हू के सुख बरसति है॥

(५६)

अधर कौ रस गेहैं कंठ लपटाइ रहैं,
सेनापति रूप सुधाकर तैं सरस है।
जे बहुत धन के हरन हारे मन के हैं,
हीतल मैं राखे सुख सीतल परस है॥
आवत जिनके अति गजराज गति पावैं,
मंगल है सोभागुरु सुंदर दरस है।
और है न रस ऐसा सुनि सखी साँची कहौं,
मोतिन के देखिवे कौं जैसौ कछू रस है॥

अयानी—अजान। तिलोत्तमै—तिलोत्तमा अप्सरा, कपोल पर उत्तम तिल को। मजु—मनोहर। घोप–नाद। दुति-शोभा।

(५७)

राधिका के उर बढ़्यौ कान्ह कौ बिरह ताप,
कोने उपचार पै न होति सितलाइयै।
गुरु जन देखि कही सखिन सौं मन मैं की,
सेनापति करी है बचन चतुराइयै॥
माधव के बिछुरे तैं पल न परत कल,
परी है तपति अति मानौ तन ताइयै।
सौंह बृखभान की न रहै तो जरनि कछू,
छाया घनस्याम की जो पूरे पुन्न पाइयै॥

(५८)

तेरे उर लागिबे कौं लाल तरसत महा,
रूप गुन बाँध्यौ तू न ताकौं उमहति है।
यह सुनि बाल जौ लौं ऊतर कौं देइ तौलौं,
आइ परी सास बात कैसे निबहति है॥
रूखी जौ कहति तौ तौ प्रीति न रहति जौव,
नेह की कहति सास डाटनि दहति है।
सेनापति या तैं चतुराई सौं कहति बलि,
हार करौ ताहि जाहि लाल तू कहति है॥

गुरु—बृहस्पति, भारी। मोतिन के—मोतियों के (मो तिनके) मुझे उनके। हीतल—हृदय तल में। सितलाइयै-ठंडक।

(५९)

बिरह बिहाल उपचार तैं न बोलै बाल,
बोली जो बुलाई नाम कान्ह कौं सुनाइ कै।
याही तें सकानी सास ननद जिठानी तिनैं,
देखि कै लजानी सोचि रही सिर नाइ कै।
मेट्यौ है कलंक वे निसंक गुरु जन कीने,
राख्यौ हरि नेह बात यौं कही बनाइ कै।
को है? कित आई? सेनापति न बसाई सखी,
कान्ह कान्ह करि कल कान कीनी आइ कै॥

(६०)

कुबिजा उर लगाई हम हूं उर लगाई (?)
पी रहैं दुहू के तन मन वारि दीने हैं।
वे तौ एक रति जोग हम एक रति जोग,
सूल करि उनके हमारे सूल कीने हैं॥
कूबरी यौं कल पैहै हम इहाँ कलपैहैं,
सेनापति स्यामैं समुझै यौं परवीने हैं।
हम वे समान ऊधौ कहौ कौन कारन तैं,
उन सुख माने हम दुख मानि लीने हैं॥

तरसत—तरसता है। उतर—उत्तर। दारनि—फटकार। चलि—सखी।

(६१)

देखत न पीछे कौं निकासि कैधौं कोसन तें,
लै कै करवाल बाग लेत बिलसत हैं।
साहस की ठौर भीर परे तें सिर कटा हैं,
सकतिन हू सौं लरिकान कौं तजत हैं॥
राखत न गारौ रज पूरे रहैं समर मैं,
सदा कर करैं सरन कौं जे तकत हैं।
सेनापति धीर सौं लरत हाथ जोरत हैं,
तातैं सूर कातर समान से लगत हैं॥

(६२)

कोट गढ़ गिरि ढाहैं जिनकौं दुरग ना हैं,
बल की अधिक छवि आरबी सहित हैं।
देखियै जिन मैं सदा गति अति मंद भारी,
मानौं ते जलद ते जकरि राखे नित हैं॥
डगनि चलत महा करिनी के बस राखे,
सब कहैं सिंधुर हैं दरद रहित हैं।
सेनापति बरने हैं महाराज राम जू कै,
हाथी हैं सुधारे असवारी के उचित हैं॥

वारि दीने—निछावर कर दिया। सूल—पीड़ा। बाग—लगाम, वाटिका। करवाल—तलवार।

(६३)

पूरत हैं कामैं सत्यभामा सुखसागर हैं,
पारिजात हू कौं जीति लेत जोर करके।
सदा सुख सोहे सेनापति बल बीर धीर,
राखत विजय बाजी मध्य जो समर के॥
रूप है अनूप सुरमनी कौ बसीकरन,
जाकौं बैन सुनैं चैन होत नर वर के।
नदन नरिंद दसरथ जू कौ रामचद,
ताके गुन मानौं बसुदेव के कुँवर के॥

(६४)

बीरैं खाइ रही तातै सोहति रकतमुखी,
नांगी ह्वै नची है संख तजि अरि भीर की।
निरवारै बारन निसारै पुनि हार हू कौं,
आड हू भुलावै नख सिख भरी नीर की॥
सेनापति पियन कौं राखै सावधान धार,
आगे ही चलावै घात जानि जो सरीर की।
जापर परति ताहि लाल करि डारै मारि,
खेलत समर फाग तेग रघुबीर की॥

आरवी—भीषण शब्द। करिनी—हथिनी। दरद—पीडा।

(६५)

बडे पै त्रिभगी रस हू मैं जे न सूधे होत,
सहज की स्याम ताई सुन्दर लहत हैं।
सेनापति सिर धरि सेए लाज छाँड़ि तातैं,
रूखे गुरुजन बैन रूखेई कहत हैं॥
हरि कौं सुनाइ कहै सखिन सैां हरिन-नैनी,
कान चतुराई परे कान्ह उमहत हैं।
और की कहा है सुमन के नेह चिकनाए (?)
मेरे प्रानप्यारे केसैा रूखे से रहत हैं॥

(६६)

घर के रहत जाके सेना पैये सुख,
जातैं होत प्रान समाधान भली भाँति है।
जाकी सुभ गति देखे मानियै परम रति,
नैक बिन बोले सुधि बुधि अकुलाति है॥
देखत ही देखत बिलानी आगे आँखिन के,
कर गहि राखी सो न क्यौंहू ठहराति है।
रस दै कै राखी सरबस जानि बारे बार,
नारी गई छूटि जैसे नारी छूटि जात है॥

त्रिभगी—कुटिल, घुघराले। रस—जल, केलि। उमहत—उमग मे आना। समाधान—सतोष। बिलानी—लीन हुई। रस—प्रीति, वैद्यक सम्बन्धी भस्म विशेष। नारी—स्त्री, नाडी।

(६७)

जाकी जोति पाइ जग रहत जगमगाइ,
पाइन पदमिनी समूह परसत है।
जाके देखें अतर कमल बिगसत चैन,
पाइ कै खुलत नैन सुख सरसत है॥
धाम की है निधि जाके आगे चंद-मंद दुति,
रूप है अनूप मध्य अंबर लसत है।
मूरति सरस सब बार है लसति जाकी,
सोई मित्त सेनापति चित्त मैं बसत है॥

(६८)

तारन की जोति जाहि मिले पै विमल होति,
जाके पाइ संग मैं न दीप सरसत है।
भुवन प्रकास उर जानियै ऊरध अध,
सोउ तही मध्य जाके जगतै रहत है॥
कामना लहत द्विज कौसिक सरब बिधि,
सज्जन भजत महातम हित रत है।
सेनापति बैन मरजाद कविताई की जु,
हरि रवि अरुन तमी कौं बरनत है॥

बिगसत—विकसित। धाम—ज्योति, घर। मित्त—मित्र, सूर्य। तारन—नक्षत्र, पुतली। जगतै—संसार को, जागृति। द्विज-ब्राह्मण, पक्षी। कौशिक-विश्वामित्र, उल्लू। तमी-रात्रि।

(६९)

प्रबल प्रताप दीप सात हू तपत जाकौं,
तीनि लोक तिमिर के दलन दलत है।
देखत अनूप सेनापति रामरूप रवि,
सबै अभिलाष जाहि देखत फलत है॥
ताही उरधारौं दुरजन कौ बिसारौ नीच।
थोरौ धन पाइ महा तुच्छ उछरत है।
सब विधि पूरौ सुर वर सभा रूरौ यह,
दिनकर सूरौ उतराइ न चलत है॥

(७०)

तेरे नीकी वसुधा है वाके तौ न वसुधा है,
तू तौ छत्रपति सो न छत्रपति मानियै।
सूर सभा तेरी जोति होति है सहसगुनी,
एक सूर आगे चंद जोति पै न जानियै॥
सेनापति सदा चढ़ी साहिबी अचल तेरी,
निसि दिन चंद चल जगत बखानियै।
महाराज रामचंद चंद तैं सरस तू है,
तेरी समता कौं चंद कैसे मन आनियै।

दीप—द्वीप। तिमिर—अज्ञान, अंधकार। दुरजन—दुष्ट-जन, (दु+रजन) दुष्ट रात्रि। धन—राशि, सपत्ति। वसुधा—पृथ्वी। छत्रपति—राजा।

(७१)

अँखियाँ सिराती ताप छाती की बुझाती रोम,
　　रोम सरसाती तन सरस परस ते।
रावरे अधीन तुम बिन अति दीन हम,
　　नीर हीन मीन जिमि काहे कौं तरसते॥
सेनापति जीवन अधार निरधार तुम,
　　जहाँ कौ ढरत तहाँ टूटत अरस ते।
उनै उनै गरजि गरजि आये घनस्याम,
　　ह्वै कै बरसाऊ एक बार तौ बरसते॥

(७२)

पर कर परै यातैं पाती तौ न दीनी लाल,
　　कीनी मनुहारि सो सभा मैं कत भाखियै।
बानी सुनि दूती की जिठानी तैं सकानी बाल,
　　सोचि रही ऊतर उचित कौन आखियै॥
सेनापति तौहीं परबीन बोली बीन जिमि,
　　दुहुन की सक सब दूरि करि नाखियै।
पाती पाती कहै कोऊ लावै जो कहूं की पाती,
　　दै कै सिरपाउ तौ हरा मैं बाँधि राखियै॥

अरस—आकाश, स्वर्ग। घनस्याम—श्रीकृष्ण, काला मेघ। मनुहारि—बिनती। आखियै—कहना चाहिये। नाखियै—नष्ट करके। पाती—पत्र। सिरपाउ—पगडी, सिर मे पैर मारना। हार में—हार में, (हरामैं) हरामी को।

(७३)

कीने नारि नीचे बैठी नारी गुरुजन बीच,
आयौ है सँदेसौ तौहीं रसिक रसाल कौं।
सेनापति देखत ही जानि सब जानि गई,
कह्यौ पर ऊतर उचित ततकाल कौं॥
होइ ज्यौं सरस काम फीकौ है कनक धाम,
देहुँ तोहि कुंदन जो माल है घिसाल कौं।
बोलि कै सुनारी भावते कौं तेरी बलिहारी,
चोकी मेरी देह तू संजोग कोई लाल कौं॥

(७४)

जेती बन बेली ओर तिनकी न कीजै दौर,
राखु मन एक ठौर नीके करि बसि मैं।
देखिकै गुराई चिकनाई बार बार भूलि,
मति ललचाहि धीरता ही कौं अब समैं॥
सेनापति स्याम रंग सेइ कै सुखित ह्वै हैं
कह्यौ है उपाइ समुझाइ कै सरस मैं।
पीरे पान खाइ नीरैं चूकि कै न जाइ मान,
खई मिटि जायगी अरूसे ही के रस मैं॥

नारि—गर्दन। जानि—जानकार। कुंदन—उत्तम जाति का सोना। सुनारी—सुनारिन, अच्छी स्त्री। चोकी—सुन्दर, गले में पहनने का आभूषण। भावते—प्यारे। नीरैं—जल के पास, समीप। खई—क्षयी, झगड़ा। अरूसे—अडूसा (अ+रूसे) बिना रूठे।

(७५)

मोती माल पोहत ही सखि न मैं सोहत ही,
मोहत ही मन मृग नैनी हाइ भाइ कै।
आयौ है अचानक तहाँई कान्ह बानक सौं,
प्यारो रस बस भई निरखत चाइ कै॥
सेनापति चातुर सखी के मिस आतुर ह्वै,
आप ही कहति ताहि बचन सुनाइ कै।
हित करि चित दै कै मोतियै परखि लै कै,
आज लाल रेसमै सकल करु आइ कै॥

(७६)

छूटे आवै काज भिन्न करत सँजोए साज,
अवगुन गहै नेह रूप सरसात है।
तीछन करयौ है जातैं होनि पति जीति करै,
लाल उर लागे अरि गात सियरात है॥
सेनापति बरने समान करि दोऊ तिनैं,
जानत हैं जान जाके ज्ञान अवदात है।
निसान कौं पाइ परै धन ही के अंतर तैं,
छूटि जात मान जैसे बान छूटि जात है॥

पोहत ही—पिरोते ही। मोतियै—मोती को, मुक्त स्त्री को। रेसमै—रेशम को, (रेसमै) रे! समय को। साज—उपकरण, ठाट बाट। अवदात—शुद्ध

(७७)

आनंद कौं कंद मुख तेरौ ता समान चंद,
कैसे करि कीजियै कलेस नाम धारी है।
आठ हू पहर कर तेरे ताप-हर कंज,
बिस कौं प्रसून कैसे होत अनुकारी है॥
तेरी सुखदाई देह जोति की न सम होति,
केसरि सरिस कहियत कष्टचारो है।
सेनापति प्रभु प्रान प्यारी तू अनूप नारी,
तेरी उपमा को भाँति जाति न बिचारी है॥

(७८)

हरि न है संग बैठी जोबन जुगारति है,
तिन ही कौ मन बच क्रम उमहति है।
जाकौं मन अनुराग बस ह्वै कै रह्यौ मधु,
बड़े-बड़े लोचननि चचल चहति है॥
सेनापति बार बार खेलत सिकार तहाँ,
मदन महीप तातैं सुख न लहति है।
कुंज कुंज छाँह तन तपति घरावति है,
हरिनी ज्यों ब्रज की बिरहिनी रहति है॥

कलेस—कष्ट, कलाओं का ईश। प्रसून-फूल। जुगारति है—नष्ट करती है। तिनही को-उन्हीं को, घास ही को। मधु-शहद, अमृत, पानी।

(७९)

प्यारौ परदेस जाके नीकी मसि भीजति है,
अंजन की सोभा के समूह सरसत हैं।
कंत कौं मिले तैं कल मन कौं करति ऐसी,
प्यारी है सदन अंग विरह तपत हैं॥
सेनापति काम हू की घार है खरी भुलाई,
बावरे से भूले मन दंपति रहत हैं॥
पानहिं न लेत कर दोऊ अदभुत कर,
कैसे-धौं परसपर पाती कौं लिखत हैं॥

(८०)

कमलै न आदरत रागै अरुन धरत,
चित्त कौं वस करत फूलन मैं न रमैं।
लै चलैं परमहंस गति महा उर राचै,
जो हरि सौं मिलि रहैं आठ हू पहर मैं॥
करन सफल सब जोवन जनम जग,
जिनके प्रसंग सुख पावैं सुरतरु मैं।
सेनापति बरने हैं प्यारी के चरन जग,
ताकी सब भाँति पाई जाति मुनिवर मैं॥

मसि भीजति है—रेखैं उठ रही हैं। कमलै—कमल को, लक्ष्मी को।

(८१)

मिलत ही जाके बढ़ि जात घर मैंन चैन,
तन कौं बसन डारियत बगराइ कै।
आवत ही जाके नीकौ चंद न लगत प्यारी,
छाया लोचन की चाहियत सुखदाइ कै॥
जाही के अरुन कर पाइ अब नित पति,
सुखित सरस जाके संगम कौं पाइ कै।
ग्रीपम की रितु वर वधू की समान करी,
सेनापति बचन की रचना बनाइ कै॥

(८२)

निरखत रूप हरि लेत गद ही कौं सब,
सूल है सु नीकौ कछू कह्यौ न परत है।
अंगना सरूप यातें भावति जो नाहै नारि,
जोवत ही जाकौं मुख सो मन बरत है॥
चित मैंन आवै नैक सरस कौं देखत ही,
तन तरुनापौ देखैं चित उत रत है।
सैनापति प्यारी कौं बखानी कै कुप्यारी हू कौं,
बचन के पेच पटतर ही करत है॥

कर—हाथ, किरण। सुखित—सूखी, सूखी। अगना—स्त्री, आँगन। जोवत—देखते ही। तरुनापौ—युवावस्था। पटतर—तुलना।

(८३)

कल है करति सब द्यौस निसाकर मुखी,
पन ही कौं पाइ कै सुधाई पकरति है।
देखत ही भावै नर मन कौं अब निकाई,
करति न कबहूँ जो हिय मैं अरति है॥
निरखत सोभा नारि है न एक काम हू को,
धनी सौं बहसि दौरि लागिये रहति है।
सेनापति कहै अचरज के बचन देखौ,
भावती की सेज अन भावती करति है॥

(८४)

घर तैं निकसि करि मार गहि मारत हैं,
मन मैं निडर बन तीरथ करत हैं।
संतन के पैंड़ैं परैं कुसै लै सदा ही चलैं,
पर धन हरिबे कौं साध न करत हैं॥
नागा करमन कौं करत दुरि छिपि पीछे,
हरि मैं परत कै वे सूली मैं परत हैं।
सेनापति धुनि महा सिद्ध मुनि जस कर,
ताहि सुनि तसकर आसन मरत हैं॥

पन—अवस्था। धनी—पति। भावती—भानेवाली। सेज—बराबरी। नागा—अंमा। हरि—विष्णु, सिंह। सूली—फाँसी, शिवजी। तसकर—चोर, वैसा करके।

(८५)

रैनि ही के बीच पाँउ धरि लाल रंग भरि,
होति जो कहनि महा रति रस डौर की।
सोभा परि नैन कौं बनाइ कर गहैं आइ,
जो मुँह लगाई है भुलाई सुधि और की॥
चीर कै कुसुंमी बर बागौ सुधरत जातैं,
सदा सुख सगिनी रसिक सिर मैार की।
बरनि कै प्यारी पन रत है बताई कबि,
सेनापति मति कौं सराहै कौन दौर की॥

(८६)

आप ईस सैल हो मैं अलकैं बहुत भाँति,
राखत बसाइ उत मानत सुरति हो।
धनि हैं वे लोक आसा पालत जिनकी तुम,
संतत रहत तजे दच्छिन की गति हो॥
सेनापति ईठ है न एक सी तिहारी डीठि,
निरखत सब हो कौं लाल द्वै जुगति हो।
धरौ निधि नोल बास उत्तर सुधारत हो,
आए हो कुवेर जु बहुत धनपति हो॥

ईस—शिव। अलकैं—अलकापुरी को। ईठ—प्रिय, मित्र। निधि—कुबेर की ९ प्रकार की निधि या खजाने हैं, पद्म, महा-पद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुन्द, कुन्द, नील तथा खर्व।

(८७)

तजत न गाँठि जे अनेक परबन भरे,
आगे पीछे और और रस सरसात हैं।
गढ़ि गढ़ि छोलैं भली भाँति बोलैं आदर सौं,
तपति हरन हिय बीच सियरात हैं॥
सेनापति जगत बखाने जे रसाल उर,
बाढ़े पित्त कोप जिन तैं न ठहरात हैं।
मानहु पियूष बाढ़ै स्रवन की भूख माह,
पूख कैसे ऊख बोल रावरे मिठात हैं॥

(८८)

छतियाँ सकुच याकी का कहैं समान तातैं,
न रन तैं मुरै सदा बीर है करन मैं
सबै भाँति पन करि बलमहिं पाग राखै,
तेज की सुनै तैं आप मानै मान खन मैं।
अबला लै अंक भरै रति जो निदान करै,
ससि सन सोभावंत मानियै जोधन मैं।
जुगति विचारि सेनापति है बरनि कहै,
बर नर नारि दोऊ एक ही बचन मैं॥

परबन—पोरुए, पर्व। स्रवन की—सुनने की, कान की।
पियूष—अमृत। सकुच—कसी हुई, कड़ी। पन—प्रतिज्ञा।
बलमहि पाग राखै—पगड़ी कस कर पहनता है, प्रियतम को अनुरक्त रखती है।

(८९)

ालन घटावै महा तिमिर मिटावै सुभ,
डीठि कौं बढ़ावै चारि वेदन बतायौ है।
ान्यौ घनसार सम सीतल सलिल रस,
सेनापति पुरबिले पुन्यन ही पायौ है॥
हँसे मन आवै अचरज उपजावै बीच,
फूलै सरसावै पीत बसन धरायौ है।
भव भय भंजन निरंजन के देखिवे कौं,
गंगा जू कौ मंजन सुअंजन बनायौ है॥

(९०)

जाके रोजनामै सेस सहस बदन पढ़ै,
पावत न पार जऊ सागर सुमति कौं।
कोई महाजन ताकी सरि कौं न पूजै नभ,
जल थल व्यापि रहै अद्भुत गति कौं॥
एक एक पुर पीछे अगनिन कोठा तहाँ,
पहुँचत आप संग साथी न सुरति कौं।
बानियै बखानैं जाको हुंडी न फिरति सोई,
नाहु सिय रानी जू कौ साहु सेनापति कौं॥

डीठि—दृष्टि। रोजनामै—नित्य की कृति। सेस—शेश जी। सरि--समता। वेदन-वेदों ने, वैद्यों ने। बीच--तरंग, मध्य। सुरति--स्मरण, सुधि। बानियै--वाणी से, बनिये को।

हिन्दी के शतक्रतु

चतुर्वेदी पं० द्वारकाप्रसाद शर्मा की

अनुपम मौलिक रचना

वारिन हेस्टिंग्ज

उपरोक्त महाशय भारतवर्ष में अंग्रेजी साम्राज्य की जड़ जमाने वाले कहे जाते हैं। ये महाशय आरम्भ में ईस्ट इंडिया कम्पनी में क्लर्क थे। क्लर्की से उन्नति करके ये महाशय तत्कालीन भारत के अंग्रेजी राज्य के सर्व प्रधान शासक हो गये। इस पुस्तक को पढ़ कर एक तरफ तो एक छोटे आदमी और जाति की उन्नति का आनन्द और दूसरी तरफ एक सबसे बड़े आदमी और जाति की अवनति का हृदय विदारक दृश्य दिखाई देता है। हिन्दुस्तान में अंग्रेजी राज्य स्थापित करने के लिये वारिन हेस्टिंग्ज ने किस तरह नवाबों और बादशाहों को धोखा दिया, कुटिल नीति की चालें खेलीं और अन्याय किया, इसका पता इस पुस्तक से लगता है। इस पुस्तक के पढ़ने से कहीं घृणा, आश्चर्य, कहीं रोना, कहीं पछताना और कहीं अफसोस होता है। इस पुस्तक को आरम्भ करके बिना समाप्त किये आप नहीं छोड़ सकते। ऐतिहासिक पुस्तक होते भी आपको इस पुस्तक में उपन्यास का आनन्द आवेगा। भारतवर्ष का प्रारम्भिक अंग्रेजी इतिहास एक पढ़ने की चीज है जो इस पुस्तक के पढ़ने से चित्र की तरह सामने खड़ा हो जाता है। २॥)